गायत्री साधना से
कुण्डलिनी जागरण

• श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री उपासना से कुण्डलिनी जागरण

पुराणों में ब्रह्मा जी के दो पत्नी होने का उल्लेख है। (१) गायत्री (२) सावित्री। वस्तुतः इस अलंकारिक चित्रण के पीछे परमात्मा की दो प्रमुख शक्तियों के होने का भाव दर्शाया गया है, पहली भाव चेतना या परा प्रकृति दूसरी पदार्थ चेतना या अपरा प्रकृति। सृष्टि में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि की जो भी क्रियाशीलता दिखाई देती है, वह सब परा प्रकृति अथवा गायत्री विद्या के अन्तर्गत आती है। गायत्री उपासना से भावनाओं का विकास इस सीमा तक होता है जिससे मनुष्य ब्रह्माण्डीय चेतना—परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ कर समाधि, स्वर्ग, मुक्ति का आनन्द लाभ प्राप्त करता है।

जगत की दूसरी सत्ता जड़ प्रकृति है। परमाणुओं का अपनी धुरी पर परिभ्रमण और विभिन्न संयोगों के द्वारा अनेक पदार्थों तथा जड़ जगत की रचना इसी के अन्तर्गत आती है। बाह्य जीवन प्रकृति परमाणुओं से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होने के कारण भौतिक जीवन में उसे अधिक महत्त्व दिया गया है। विज्ञान की समस्त धाराएँ इसी के अन्तर्गत आती हैं। आज की भौतिक प्रगति को सावित्री साधना का एक अंग कहा जा सकता है, पर उसका मूल अभी तक भौतिक विज्ञान की पकड़ में नहीं आया। इसी कारण अच्छे से अच्छे यंत्र बना लेने पर भी मानवीय प्रतिभा अपूर्ण लगती है। उसकी पूर्णता सावित्री उपासना से होती है।

योग विज्ञान के अन्तर्गत कुण्डलिनी साधना की चर्चा प्रायः होती है। कुण्डलिनी साधना वस्तुतः चेतन प्रकृति द्वारा जड़ पदार्थों के नियन्त्रण की ही विद्या है। भौतिक विज्ञान तो उपकरण और यंत्र साध्य होते हैं, पर परा और अपरा प्रकृति के संयोग से प्राप्त विज्ञान में ऐसी कोई जटिल प्रणाली आवश्यक नहीं होती। परमात्मा का बनाया हुआ सर्व समर्थ शरीर ही उन आवश्यकताओं को पूर्ण कर देता है। रेडियो ट्रांसमिशन में तो केवल संदेश—संप्रेषण की एकांगी व्यवस्था रहती है, पर शरीर एक

ऐसा समर्थ यंत्र है, यदि उसके पूरी तरह संचालन की जानकारी हो जाये तो मनुष्य ब्रह्माण्ड के किसी भी कोने की किसी भी शक्ति सत्ता से सम्पर्क स्थापित कर सकता है, हलचल और परिवर्तन प्रस्तुत कर सकता है । इन साधनों के अन्तर्गत जिस परमाणु शक्ति का नियंत्रण, प्रयोग प्रक्षेपण होता है । उसे 'प्राण' कहते हैं । प्राण वस्तुतः एक ऐसा आग्नेय स्फुल्लिंग है जिसे जड़ भी कह सकते हैं, चेतन भी । इस अर्द्धचेतन परमाणु को देखने जानने, विकसित करने, विस्फोट करने नियंत्रित करने, आदि की विद्या का साधना का नाम कुण्डलिनी साधना है ।

अतीत कालीन भारत को देखें तो पता चलता है कि हमारी प्रगति आत्मिक ही नहीं रही भौतिक दृष्टि से भी यह देश की समृद्धि और सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचा है । इस जगत को माया, मिथ्या, भ्रम, जंजाल कहा गया, यह मध्य युग की देन है । दोनों अपेक्षाओं में संगति संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता कुण्डलिनी साधना द्वारा पूर्ण होती रही है । गायत्री उपासना द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा का विकास और कुण्डलिनी साधना द्वारा भौतिक सिद्धियों सामर्थ्यों की उपलब्धि से यहाँ का जीवन क्रम परिपूर्ण बना रहा । लोक और परलोक दोनों में प्रत्यक्ष स्वर्ग की आनन्दानुभूति होती रही । इसीलिए गायत्री और सावित्री दोनों ही उपासनाओं को समान महत्व दिया गया । कुण्डलिनी साधना में इन दोनों का समन्वय है । इस विज्ञान का सहयोग लिए बिना आज का विज्ञान भी मानवता का कल्याण नहीं कर सकता ।

गायत्री और सावित्री दोनों परस्पर पूरक हैं । इनके मध्य कोई प्रतिद्वन्दिता नहीं । गंगा–यमुना की तरह ब्रह्म हिमालय की इन्हें दो निर्झरिणी कह सकते हैं । सच तो यह है कि दोनों अविच्छिन्न रूप से एक–दूसरे के साथ गुँथी हुई हैं । इन्हें एक प्राण दो शरीर कहना चाहिए । ब्रह्मज्ञानी को भी रक्त–मांस का शरीर और उसके निर्वाह का साधन चाहिए, पदार्थों का सूत्र संचालन चेतना के बिना सम्भव नहीं । इस प्रकार यह सृष्टि क्रम दोनों के संयुक्त प्रयास से चल रहा है । जड़–चेतन का संयोग बिखर जाय तो फिर दोनों में से एक का भी अस्तित्व शेष न रहेगा । दोनों अपने मूल कारण में विलीन हो जायेंगे । इसे सृष्टि के, प्रगति रथ के दो पहिए कहना चाहिए । एक के बिना दूसरा निरर्थक है । अपंग तत्वज्ञानी और मूढ़ मति नर–पशु दोनों ही अधूरे

हैं । शरीर में दो भुजाऐं, दो पैर, दो आँखें, दो फेंफड़े, दो गुर्दे आदि हैं । ब्रह्म शरीर भी दो शक्ति धाराओं के सहारे यह सृष्टि प्रपंच संजोये हुए है, इन्हें उसकी दो पत्नियाँ, दो धाराऐं आदि किसी भी शब्द प्रयोग के सहारे ठीक तरह वस्तुस्थिति को समझने का प्रयोजन पूरा किया जा सकता है । पत्नी शब्द अलंकार मात्र है । चेतन सत्ता का कुटुम्ब परिवार मनुष्यों जैसा कहाँ है ? अग्नि तत्व की दो विशेषताऐं हैं-गर्मी और रोशनी । कोई चाहे तो इन्हें अग्नि की दो पत्नियाँ कह सकते हैं । यह शब्द अरुचिकर लगे तो पुत्रियाँ कह सकते हैं । सरस्वती को कहीं ब्रह्मा की पुत्री कहीं पत्नी कहा गया है । इसे स्थूल मनुष्य व्यवहार जैसा नहीं समझना चाहिए । यह अलंकारिक वर्णन मात्र उपमा भर के लिए है । आत्मशक्ति को गायत्री और वस्तु-शक्ति को सावित्री कहते हैं । सावित्री साधना को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं । उसमें शरीरगत प्राण ऊर्जा की प्रसुप्ति, विकृति के निवारण का प्रयास होता है । बिजली की ऋण और धन दो धाराऐं होती हैं । दोनों के मिलने से शक्ति प्रवाह बहता है । गायत्री और सवित्री के समन्वय से साधना की समग्र आवश्यकता पूरी होती है । गायत्री साधना का सन्तुलित लाभ उठाने के लिए सावित्री शक्ति को भी साथ लेकर चलना पड़ता है ।

समन्वयात्मक साधना का जितना महत्व है उतना एकांगी का, असंबद्ध का नहीं । प्रायः साधना क्षेत्र में इन दिनों यही भूल होती रही है । ज्ञान-मार्गी, राजयोगी, भक्तिपरक साधना तक सीमित रह जाते हैं और हठयोगी, कर्मकाण्डी, तप साधनाओं में निमग्न रहते हैं । उपयोगिता दोनों की है । महत्ता किसी की भी कम नहीं, (पर उनका एकांगीपन उचित नहीं) दोनों को जोड़ा और मिलाया जाना चाहिए । यह शिव-पार्वती विवाह का गणेश जैसा भावनात्मक वरदान और कार्तिकेय जैसे पदार्थात्मक अनुदानों की भूमिका प्रस्तुत कर सकता है ।

हम समन्वयात्मक साधना की उपयोगिता मानते रहे हैं और उसी का मार्गदर्शन करते रहते हैं । वैदिक योग साधना के साथ-साथ तान्त्रिक प्रयोगों को भी महत्व दिया है । गायत्री साधना को प्रमुखता देते हुए भी कुण्डलिनी जागरण की उपयोगिता को माना है । यही कारण है कि प्रथम पाठ पढ़ाने के बाद अब दूसरे पाठ की भी पृष्ठभूमि तैयार की जा रही है । इसे प्रकारान्तर न समझा जाय इसमें विरोधाभास न खोजा जाय । यह इकलौती सन्तान के बड़े होने पर उसका जोड़ा मिलाने,

विवाह करने का प्रयत्न मात्र है । यों गायत्री के देवता सविता को विष्णु या शिव मानते हैं और उनकी पत्नी अग्नि–लक्ष्मी काली को कुण्डलिनी का प्रतीक माना गया है । इस प्रकार सुगम युग्म एक प्रकार से नर–नारी का, शिव–पार्वती का विवाह ही हुआ । धनुष तोड़ने की प्रक्रिया पूरी करके इसे सिया–स्वयंवर, राम–जानकी का विवाह सम्पन्न करना कहा जा सकता है । पर यदि कोई कुण्डलिनी और गायत्री में भाषा की दृष्टि से एक ही लिंग देखता हो तो भी उसे कुछ अचम्भा नहीं करना चाहिए । अभी पिछले ही दिनों में दो नारियों ने परस्पर कानूनी विवाह किया है । कुछ दिन पूर्व दो पुरुष भी ऐसा ही समलिंगी विवाह कर चुके हैं ।

जीव और ब्रह्म दो पुल्लिंग होते हुए भी परस्पर विवाह करते हैं । साक्षी दृष्टा, ब्रह्म निष्क्रिय है, उसकी परा–अपरा प्रकृतियाँ दोनों परस्पर मिल–जुलकर ही अपने संयोग–संभोग से इस समस्त सृष्टि का सृजन कर संचालन कर रही हैं । यह कथन अलंकार भर हैं । वस्तुतः नर–नारी जैसा लिंग भेद सूक्ष्म जगत में कहीं है ही नहीं । गायत्री या कुण्डलिनी को स्त्री और ब्रह्म शिव को पुरुष मानना अपनी बात को चेतना का उदाहरण देकर समझाना भर है । तत्वतः इस उच्च शक्ति क्षेत्र में नर–नारी जैसा कोई भेद है ही नहीं । इस जगत में भी जिन ब्रह्मवादियों को तत्वज्ञान हो जाता है, वे नर–नारी के शरीर भेदों के अन्तर को भी सर्वथा भुला ही देते हैं । उन्हें सभी में एक लिंग, एक तत्व दिखाई पड़ता है । उनकी दृष्टि में न कोई नर है न नारी । अद्वैत ज्ञान में भेद बुद्धि समाप्त होते ही नर–नारी की भिन्नता भी समाप्त हो जाती है । कुण्डलिनी और गायत्री विद्याओं के सम्बन्ध में यदि विवाह, संयोग, समन्वय जैसी चर्चा अलंकारिक रूप से आ पड़े तो उसमें कुछ विस्मय न किया जाय, इसीलिए यह पंक्तियाँ लिखी गई हैं ।

तत्वदर्शियों ने गायत्री और कुण्डलिनी को परस्पर पूरक माना है । और एकात्म भाव में देखा है । इसके कुछ प्रकरण आगे देखिए–

कुण्डलिनी साधना के अन्तर्गत षटचक्र वेधन प्रक्रिया मुख्य है । यही इस साधना का प्रधान आधार है । गायत्री शक्ति भी वही प्रयोजन पूरा करती है । इस प्रकार मूलतः वे दोनों एक ही छड़ के दो सिरों की तरह अभिन्न ही हैं । षट्चक्र जागरण में कुण्डलिनी शक्ति को गायत्री का सहकार प्राप्त हो जाता है ।

गायत्री–मन्त्र का 'भू–कार' भू–तत्व या पृथ्वी–तत्व है । साधना के मार्ग में वह मूलाधार चक्र है । फिर जगन्माता के निम्नस्तर ब्राह्मी या इच्छा शक्ति–महायोनि पीठ में सृष्टि–तत्व है । 'भुवः' भुवर्लोक या अन्तरिक्ष तत्व । साधना की दृष्टि से यह विशुद्धि चक्र है और महाशक्ति के मध्यस्तर में पीनोन्नत पयोधर में, वैष्णवी या क्रिया–शक्ति पालन व सृष्टि तत्व है । 'स्वःकार' सुरलोक या स्वर्ग–तत्व । साधना के पथ में सहस्रार निर्दिष्ट चक्र एवं आद्यशक्ति के ऊर्ध्व या उच्चस्तर में गौरी या ज्ञान–शक्ति, संहार या लय तत्व है । यही वेदमाता गायत्री का स्वरूप तथा स्थान रहस्य है ।"

यों ज्ञान चेतना समस्त शरीर में संव्याप्त है पर उसका केन्द्र मस्तिष्क माना गया है । यों क्रिया शक्ति संपूर्ण शरीर में फैली पड़ी है, पर उसका केन्द्र स्थल जननेन्द्रिय है । नपुंसक व्यक्ति प्रायः सभी उच्चगुणों के अभिवर्धन और साहस भरे पुरुषार्थों के सम्पादन में असमर्थ रहते हैं । किसी को नपुंसक क्लीव कहना उसकी अन्तःक्षमता को अपमानित करना है । शरीर के अन्य अंग दुर्बल हों तो उसके बिना प्रगति रुकेगी नहीं पर नपुंसक से कुछ महत्वपूर्ण कार्य बन पड़ना कठिन है । सरकारी नौकरियों में भर्ती करते समय डाक्टरी जाँच में यह भी परीक्षा की जाती है कि वह व्यक्ति नपुंसक तो नहीं है । शारीरिक विशेषताओं का केन्द्र इसीलिए जननेन्द्रिय गह्वर के मर्मस्थल योनि केन्द्र को माना गया है ।

साधना के यही दो मर्मस्थल हैं । उन्हें ही कायपिण्ड के दो ध्रुव कहते हैं । यों विद्युत एक ही है पर उसे दो भागों में विभाजित किया गया है–एक धन (पोजेटिव) दूसरी ऋण (नेगेटिव) । मानवीय समान चेतना की धन विद्युत इस ज्ञान केन्द्र मस्तिष्क केन्द्र में केन्द्रित है–इस स्थल को अध्यात्म की भाषा में सहस्रार कहते हैं । दूसरी ऋण विद्युत–काय केन्द्र जननेन्द्रिय मूल में है–जिसे 'मूलाधार' कहते हैं । इन दो केन्द्रों में से ज्ञान केन्द्र को गायत्री का और काम केन्द्र को कुण्डलिनी का उद्गम केन्द्र कहा गया है । भौतिक क्षमताऐं–समृद्धियाँ, सिद्धियाँ कुण्डलिनी में प्रादुर्भूत होती हैं और आध्यात्मिक दिव्य विभूतियाँ, ऋद्धियाँ गायत्री के द्वारा विकसित होती हैं । दोनों का सम्मिश्रण साधक को समृद्धियों और विभूतियों से, ऋद्धियों और सिद्धियों से, ज्ञान और क्रिया से सुसम्पन्न बनाता है । इसलिए दोनों की सम्मिश्रित साधना का अवलम्बन करना ही समन्वयात्मक प्रवृत्ति के साधकों के लिए उपयुक्त है ।

सहस्रार कमल को ब्रह्म केन्द्र के रूप में—गायत्री गह्वर के रूप में विष्णु के क्षीर सागर या शिव के कैलाश के रूप में चित्रित किया गया है । इसके प्रमाण इस प्रकार मिलते हैं—

ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे नित्यलग्नमंवदात्मतभुतम् ।
कुण्डली विवरकाण्ड मण्डितं द्वादशार्ण सरसीरुहं भजे ।।

—पादुका पेचक्र

मस्तक के मध्य अधोमुख सहस्त्र दल कमल है । उसके उदर में अद्‌भुत पथ गामिनी नाड़ी है, उसे कुण्डलिनी कहते हैं ।

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो,
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने ।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियतमनसस्तस्य कृतिनः,
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ।।

—षट्‌चक्र निरुपणम् ४६

इस सहस्रार कमल की साधना से योगी चित्त को स्थिर कर आत्मभाव में लीन हो जाता है । भवबन्धन से छूट जाता है । समग्र शक्तियों से सम्पन्न होता है । स्वच्छन्द विचरता है और उसकी वाणी विमल हो जाती है ।

शिरःकपालविवरे ध्यायेद्‌दुग्धामहोदधिम् ।
तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्‌मे चन्द्रं विचिन्तयेत् ।।

—शिव संहिता ५/१५९

कमल की गुफा में क्षीर सागर समुद्र का तथा सहस्र दल कमल में चन्द्रमा जैसे प्रकाश का ध्यान करे ।

सहस्रार चन्द्र की कैलाश पर्वत से तुलना करते हुए वहाँ की दिव्य परिस्थितियों का मत्स्य पुराण में वर्णन किया गया है । यह वर्णन तिब्बत स्थित कैलाश पहाड़ का नहीं वरन् विशुद्ध रूप से ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित सहस्रार ज्ञान केन्द्र का ही है । संवर्तक बड़वानल विद्युत का वहीं निवास है । महासर्पों का सरोवर उसी केन्द्र में है । साधना की सिद्धि इसी केन्द्र में तीव्र गति से होती है । यह तथ्य कैलाश पहाड़ पर लागू नहीं हो सकते ।

परस्परेण द्विगुणा धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरःस्मृतम् ।
सरस्वतीं प्रभवति तस्माज् ज्योतिष्ठती तु या ।
इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम् ।
छिद्‌यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात् । —मत्स्य पुराण

कैलाश पर्वत पर की हुई साधना से दूनी सिद्धि होती है । धर्म, अर्थ, काम तीनों ही प्राप्त होते हैं । वह हेम कूट पर्वत का सरोवर सर्पों का बनाया हुआ है । ज्योतिर्मान, प्रज्ञा वहीं उत्पन्न होती है ।

वहाँ संवर्तक नामक महा भयानक अग्नि जलती रहती है । वह उस सरोवर के जल को पी जाता है । यह अग्नि समुद्र को भी सुखा देने वाला वड़वा मुख है ।

मूलाधार को शक्ति का केन्द्र माना गया है । इसे अग्नि कुण्ड–शक्ति उद्‍गम काली पीठ तथा क्रिया शक्ति की अधिष्ठात्री कुण्डलिनी के रूप में चित्रित किया गया है । इसका संकेत अध्यात्म शास्त्र में इस प्रकार मिलता है–

आदेहमध्यकट्यन्तमग्निस्थानमुदाहृतम् ।
तत्र सिन्दूरवर्णोऽग्निर्ज्वलनं दशपञ्च च ॥

–त्रिशिखा १३७

कटि से निम्न भाग में अग्नि स्थान है । वह सिन्दूर के रंग का है । उसमें पंद्रह घड़ी प्राण को रोककर अग्नि की साधना करनी चाहिए ।

नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वं कुण्डलिनीस्थानम् । अष्टप्रकृति रूपाऽष्टधा कुण्डलीकृता कुण्डलिनी शक्तिर्भवति । यथावद्‍वायुसंचारं जलान्नादीनि परितः स्कन्धपार्श्वेषु निरुध्यैनं मुखेनैष समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योगकालेऽपानेनाग्निना च स्फुरति ।

–शाण्डिल्योपनिषद् ७/६

नाभि के नीचे कुण्डलिनी का निवास है । यह आठ प्रकृति वाली है । इसके आठ कुण्डल है । यह प्राण वायु को यथावत संचालित करती है । अन्न और जल को व्यवस्थित करती है । मुख तथा ब्रह्म रन्ध्र की अग्नि को प्रकाशित करती है ।

तडिल्लेखा तन्वी तपन शशि वैश्वानरमयी ।
तडिल्लता समरुचिर्विद्युल्लेखेन भास्वती ॥

बिजली की बेल के समान, तपते हुए चन्द्रमा के समान, अग्निमयी वह शक्ति दृष्टिगोचर होती है ।

इन सब तथ्यों पर दृष्टिपात करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री की ज्ञान शक्ति का और कुण्डलिनी की क्रिया शक्ति का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । दोनों के मिलने से ही परिपूर्ण

एवं समग्र उत्कर्ष की सम्भावना मूर्तिमान होती है । इन दोनों साधनाओं में विराधाभास नहीं माना जाना चाहिए और न प्रकारान्तर । वरन् यही समझना चाहिए कि साधना-क्रम में दोनों का समन्वय होने से भौतिक और आत्मिक दोनों ही सफलताओं का पथ प्रशस्त होता है । यह समन्वयात्मक साधना भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रयोजनों को पूरा करती है । इसीलिए साधना विज्ञान के तत्ववेत्ता एकांगी साधना की अपूर्णता को ध्यान में रखते हुए उभय प्रयोजन पूरे करने वाली समग्र साधना का पथ प्रदर्शन करते रहे हैं । वही यहाँ भी किया जा रहा है ।

या देवता भोगकरी सा मोक्षाग्र न कल्पते ।
मोक्षदा नहि भोगाय त्रिपुरा तु द्वय प्रदा ।।

—त्रिपुरा तन्त्र

जो देवता भोग देते हैं वे मोक्ष नहीं देते जो मोक्ष देते हैं वे भोग नहीं देते, पर कुण्डलिनी दोनों प्रदान करती है ।

कुण्डलिनी के षट-चक्र और उनका वेधन

कुण्डलिनी साधना को अनेक स्थानों पर षट्चक्र वेधन की साधना भी कहते हैं । पंचकोषी साधना या पंचाग्नि विद्या भी गायत्री की कुण्डलिनी या सावित्री साधना के रूप है । एम. ए. एक डिग्री है । इसे हिन्दी, अंग्रेजी, सिविक्स, इकानामिक्स किसी भी विषय से प्राप्त किया जा सकता है । उसी प्रकार आत्म-तत्व, आत्म-शक्ति एक है उसे प्राप्त करने के लिए वेवचन विश्लेषण और साधना विधान भिन्न हो सकते हैं । इसमें किसी तरह का विरोधाभाष नहीं है ।

तैत्तरीय आरण्यक में चक्रों को देवलोक एवं देव संस्थान कहा गया है । शंकराचार्य कृत आनन्द लहरी के १७ वें श्लोक में भी ऐसा ही प्रतिपादन है ।

योग दर्शन समाधिपाद का ३६ वाँ सूत्र है-

विशोकाया ज्योतिष्मती ।

इसमें शोक सन्तापों का हरण करने वाली ज्योति शक्ति के रूप में कुण्डलिनी शक्ति की ओर संकेत है ।

इस समस्त शरीर को, सम्पूर्ण जीव कोशों को, महाशक्ति की प्राण

प्रक्रिया सम्भाले हुए है । उस प्रक्रिया के दो ध्रुव, दो खण्ड हैं । एक को चय प्रक्रिया एनाबॉलिक एक्शन तथा दूसरे को अपचय प्रक्रिया (कैटाबॉलिक एक्शन) कहते हैं । इसी को दार्शनिक भाषा में शिव एवं शक्ति भी कहा जाता है । शिव क्षेत्र सहस्रार तथा शक्ति क्षेत्र मूलाधार कहा गया है । इन्हें परस्पर जोड़ने वाली, परिभ्रमण शील शक्ति का नाम कुण्डलिनी है ।

सहस्रार और मूलाधार का क्षेत्र विभाजन करते हुए मनीषियों ने मूलाधार से लेकर कण्ठ पर्यन्त का क्षेत्र एंव चक्र संस्थान 'शक्ति' भोग बताया है और कण्ठ से ऊपर का स्थान 'शिव' देश कहा है ।

मूलाद्धाराद्धि षट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरतम् ।
कण्ठादुपरि मूर्द्धान्तं शाम्भवं स्थानमुच्यते ।।

—वराहश्रुति

मूलाधार से कण्ठपर्यन्त शक्ति का स्थान है । कण्ठ के ऊपर से मस्तक तक शाम्भव स्थान है । यह बात पहले कही जा चुकी है ।

मूलाधार से सहस्रार तक की, काम बीज से ब्रह्म बीज तक की यात्रा को ही महायात्रा कहते हैं । योगी इसी मार्ग को पूरा करतें हुए परम लक्ष्य तक पहुँचते हैं । जीव सत्ता—प्राण शक्ति का निवास जननेन्द्रिय मूल में है । प्राण उसी भूमि में रहने वाले रजवीर्य से उत्पन्न होते हैं । ब्रह्म सत्ता का निवास ब्रह्मलोक में ब्रह्मरन्ध्र में माना गया है । यह द्युलोक, देवलोक, स्वर्ग लोक है । आत्मज्ञान का, ब्रह्म ज्ञान का सूर्य इसी लोक में निवास करता है । कमल पुष्प पर विराजमान ब्रह्माजी, कैलाशवासी शिव और शेषशायी विष्णु का निवास जिस मस्तिष्क मध्य केन्द्र में है—उसी नाभिक (न्यूकलियस) को सहस्रार कहते हैं । आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया यहीं सम्पन्न होती है । पतन के—स्खलन के गर्त में पड़ी क्षत—विक्षत आत्म सत्ता जब ऊर्ध्वगामी होती है तो उसका लक्ष्य इसी ब्रह्मलोक तक सूर्यलोक तक पहुँचना होता है । योगाभ्यास का परम् पुरुषार्थ इसी निमित्त किया जाता है । कुण्डलिनी जागरण का उद्देश्य यही है ।

आत्मोत्कर्ष की महायात्रा जिस राजमार्ग से होती है उसे मेरुदण्ड या सुषुम्ना कहते हैं । उसका एक सिरा मस्तिष्क का, दूसरा काम केन्द्र का स्पर्श करता है । कुण्डलिनी साधना की समस्त गतिविधियाँ प्रायः इसी क्षेत्र को परिष्कृत एवं सरल बनाने के लिए हैं । इड़ा पिंगला के प्राण

प्रवाह इसी क्षेत्र को दुहराने के लिए नियोजित किये जाते हैं । साबुन, पानी से कपड़े धोये जाते हैं । झाडू-झाड़न से कमरे की सफाई होती है । इड़ा-पिंगला के माध्यम से किये जाने वाले नाड़ी शोधन प्राणायाम मेरुदण्ड का संशोधन करने के लिए हैं । इन दोनों ऋणात्मक और घनात्मक शक्तियों का उपयोग सृजनात्मक उद्देश्य से भी होता है ।

इमारतें बनाने वाले कारीगर कुछ समय नींव खोदकर गड्ढा करते हैं इसके बाद वे ही दीवार चुनने के काम में लग जाते हैं । इसी प्रकार इड़ा पिंगला संशोधन और सृजन का दुहरा काम करते हैं । जो आवश्यक है उसे विकसित करने में वे कुशल माली की भूमिका निभाते हैं । यों आरम्भ में जमीन जोतने जैसा ध्वंसात्मक कार्य भी उन्हीं को करना पड़ता है, पर यह उत्खनन निश्चित रूप से उन्नयन के लिए होता है । माली भूमि खोदने, खर-पतवार उखाड़ने, पौधे की काट-छाँट करने का काम करते समय ध्वंस में संलग्न प्रतीत होता है, पर खाद पानी देने रखवाली करने में उसकी उदार सृजनशीलता का भी उपयोग होता है । इड़ा पिंगला के माध्यम से सुषुम्ना क्षेत्र में काम करने वाली प्राण विद्युत का विशिष्ट संचार क्रम प्रस्तुत करके कुण्डलिनी जागरण की साधना सम्पन्न की जाती है ।

मेरुदण्ड को राजमार्ग-महामार्ग कहते हैं । इसे धरती से स्वर्ग में पहुँचने का देवयान मार्ग कहा गया है । इस यात्रा के मध्य में सात लोक हैं । इस्लाम धर्म के सातवें आसमान पर खुदा का निवास माना गया है । ईसाई धर्म में भी इससे मिलती-जुलती मान्यता है । हिन्दू धर्म के भूः भुवः स्वः जनः तपः महः सत्यम् यह सात लोक प्रसिद्ध है । आत्मा और परमात्मा के मध्य इन्हें विराम स्थल माना गया है । लम्बी मंजिलें पूरा करने के लिए लगातार ही नहीं चला जाता । बीच-बीच में विराम भी लेने होते हैं । रेलगाड़ी गन्तव्य स्थान तक बीच के स्टेशनों पर रुकती, कोयला, पानी लेती चलती है । इन विराम स्थलों को 'चक्र' कहा गया है । चक्रों की व्याख्या दो रूपों में होती है, एक अवरोध के रूप में दूसरे अनुदान के रूप में । महाभारत में चक्रव्यूह की कथा है । अभिमन्यु उसमें फँस गया था । वेधन कला की समुचित जानकारी न होने से वह मारा गया था । चक्रव्यूह में सात परकोटे होते हैं । इस अलंकारिक प्रसंग को आत्मा का सात चक्रों में फँसा होना कह सकते हैं । भौतिक आकर्षणों की, भ्रान्तियों की, विकृतियों की चहार दीवारी

के रू प में भी चक्रों की गणना होती है । इसलिए उसके वेधन का विधान बताया गया है । रामचन्द्रजी ने बाली को मार सकने की अपनी क्षमता का प्रमाण सुग्रीव को दिया था । उनने सात ताड़ वृक्षों को एक वाण से बेधकर दिखाया था । इसे चक्रवेधन की उपमा दी जा सकती है । भागवत माहात्म्य में धुन्धकारी प्रेत का बांस की सात गाँठें फोड़ते हुए सातवें दिन कथा प्रभाव से देव देहधारी होने की कथा है । इसे चक्रवेधन का संकेत समझा जा सकता है ।

चक्रों को अनुदान केन्द्र इसलिए कहा जाता है कि उनके अन्तराल में दिव्य सम्पदायें भरी पड़ी हैं । उन्हें ईश्वर ने चक्रों की तिजोरियों में इसलिए बन्द करके छोड़ा है कि प्रौढ़ता, पात्रता की स्थिति आने पर ही उन्हें खोलने उपयोग करने का अवसर मिले । कुपात्रता, अयोग्यता की स्थिति में बहुमूल्य साधन मिलने पर तो अनर्थ ही होता है । कुसंस्कारी सन्तानें उत्तराधिकार में मिली बहुमूल्य सम्पदा से दुर्व्यसन अपनाती और विनाश पथ पर तेजी से बढ़ती हैं । छोटे बच्चों को बहुमूल्य जेवर पहना देने से उनकी जान जोखिम का खतरा उत्पन्न हो जाता है । धातुओं की खदानें जमीन की ऊपरी परत पर बिखरी नहीं होती उन्हें प्राप्त करने के लिए खुदाई करनी पड़ती है । मोती प्राप्त करने के लिए समुद्र में गहरे गोते लगाने पड़ते हैं । यह अवरोध इसलिए है कि साहसी एवं सुयोग्य सत्पात्रों को ही विभूतियों का वैभव मिल सके । मेरुदण्ड में अवस्थित चक्रों को ऐसी सिद्धियों का केन्द्र माना गया है, जिनकी भौतिक और आत्मिक प्रगति के लिए नितान्त आवश्यकता रहती है ।

चक्रवेधन, चक्रशोधन, चक्र परिष्कार, चक्र जागरण आदि नामों से बताये गये विवेचनों एवं विधानों में कहा गया है कि इस प्रयास से अदक्षताओं एवं विकृतियों का निराकरण होता है । जो उपयुक्त है उसकी अभिवृद्धि का पथ प्रशस्त होता है । सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन दुष्प्रवृत्तियों के दमन में यह चक्रवेधन विधान कितना उपयोगी एवं सहायक है, इसकी चर्चा करते हुए शारदा तिलक ग्रन्थ के टीकाकार ने 'आत्म विवेक' नामक किसी साधना ग्रन्थ का उद्धरण प्रस्तुत किया गया है कि–

गुदलिंगान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम् ।
परमः सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वकः ।।
योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम् ।
स्वाधिष्ठानं लिंगमूले षटपत्रञ्च क्रमस्य तु ।।

पूर्वादिषु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनुक्रमात् ।
प्रश्रयः क्रूरता गर्वो नाशो मूर्च्छा ततः परम् ।।
अवज्ञा स्यादविश्वासो जीवस्य चरतो ध्रुवम् ।
नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम् ।।
सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा ।
लज्जा भयं घृणा मोहः कषायोऽथ विषादिता ।।
हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम् ।
लौल्यं प्रनाशः कपटं वितर्कोऽप्यनुतापिता ।।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा ममता ततः ।
क्रमेण दम्भो वैकल्यं विवेकोऽहंकृतिस्तथा ।।
फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः ।
कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम् ।।
तत्र प्रणव उद्गीथो हुं फट् वषट् स्वधा तथा ।
स्वाहा मनोऽमृतं सप्त स्वराः षड्जादयो विषम ।।
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश

(१) गुदा और लिंग के बीच चार पंखुरियों वाला 'आधार चक्र' है । वहाँ वीरता और आनन्द भाव का निवास है । (२) इसके बाद स्वाधिष्ठान चक्र लिंग मूल में है । उसकी छः पंखुरियाँ हैं । इसके जागृत होने पर क्रूरता, गर्व, आलस्य, प्रमाद, अवज्ञा, अविश्वास आदि दुर्गुणों का नाश होता है । (३) नाभि में दस दल वाला मणिपूर चक्र है । यह प्रसुप्त पड़ा रहे तो तृष्णा, ईर्ष्या, चुगली, लज्जा, भय, घृणा, मोह आदि कषाय–कल्मष मन में जड़ जमाये पड़े रहते हैं । (४) हृदय स्थान में अनाहत चक्र है । यह बारह पंखुरियों वाला है । यह सोता रहे तो लिप्सा, कपट, तोड़–फोड़, कुतर्क, चिन्ता, मोह, दम्भ, अविवेक अहंकार से भरा रहेगा । जागरण होने पर यह सब दुर्गुण हट जायेंगे । (५) कण्ठ में विशुद्धाख्य चक्र यह सरस्वती का स्थान है । यह सोलह पंखुरियों वाला है । यहाँ सोलह कलाऐं सोलह विभूतियाँ विद्यमान हैं । (६) भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र है, यहाँ 'ॐ' उद्गीय, हूँ, फट, विषद्, स्वधा, स्वाहा, अमृत, सप्त स्वर आदि का निवास है । इस आज्ञा चक्र का जागरण होने से यह सभी शक्तियाँ जाग पड़ती हैं ।

श्री हडसन ने अपनी पुस्तक 'साइन्स आव सीयर शिप' में अपना मत व्यक्त किया है । प्रत्यक्ष शरीर में चक्रों की उपस्थिति का परिचय तन्तु

गुच्छकों के रूप में देखा जा सकता है । अन्तर्दर्शियों का अनुभव इन्हें सूक्ष्म शरीर में उपस्थित दिव्य शक्तियों का केन्द्र संस्थान बताता है । कुण्डलिनी के बारे में उनके पर्यवेक्षण का निष्कर्ष है कि वह एक व्यापक चेतना शक्ति है । मनुष्य के मूलाधार चक्र में उसका सम्पर्क तन्तु है जो व्यक्ति सत्ता को विश्व सत्ता के साथ जोड़ता है । कुण्डलिनी जागरण से चक्र संस्थानों में जागृति उत्पन्न होती है । उसके फलस्वरूप-पारभौतिक (सुपर फिजीकल) और भौतिक (फिजीकल) के बीच आदान-प्रदान का द्वार खुलता है । यही है वह स्थिति जिसके सहारे मानवी सत्ता में अन्तर्हित दिव्य शक्तियों का जागरण सम्भव हो सकता है ।

चक्रों की जागृति मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव को प्रभावित करती है । स्वाधिष्ठान की जागृति से मनुष्य अपने में नव शक्ति का संचार हुआ अनुभव करता है । उसे बलिष्ठता प्रतीत होती है । श्रम में उत्साह और गति में स्फूर्ति की अभिवृद्धि का आभास मिलता है । मणिपूर चक्र से साहस और उत्साह की मात्रा बढ़ जाती है । संकल्प दृढ़ होते हैं और पराक्रम करने के हौंसले उठते हैं । मनोविकार स्वयंमेव घटते हैं और परमार्थ प्रयोजनों में अपेक्षाकृत अधिक रस मिलने लगता है । अनाहत चक्र की महिमा हिन्दुओं से भी अधिक ईसाई धर्म के योगी बताते हैं । हृदय स्थान पर गुलाब के फूल की भावना करते हैं और उसे महाप्रभु ईसा का प्रतीक मानते हैं । भारतीय योगियों की दृष्टि में यह भाव संस्थान है । कलात्मक उमंग-रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं का उत्पादक स्रोत यही है । बुद्धि की वह परत जिसे विवेकशीलता कहते हैं । आत्मीयता का विस्तार सहानुभूति एवं उदार सेवा सहकारिता के तत्व इस अनाहत चक्र से ही उद्भूत होते हैं । कंठ में विशुद्धि चक्र है । इसमें बहिरंग स्वच्छता और अन्तरंग पवित्रता के तत्व रहते हैं । दोष-दुर्गुणों के निराकरण की प्रेरणा और तदनुरूप संघर्ष क्षमता यहीं से उत्पन्न होती है । शरीर शास्त्र में थाइराइड ग्रन्थि और उससे स्रवित होने वाले हारमोनों के सन्तुलन-असन्तुलन से उत्पन्न लाभ-हानि की चर्चा की जाती है । अध्यात्म शास्त्र द्वारा प्रतिपादित विशुद्धि चक्र का स्थान तो यहीं है, पर वह होता सूक्ष्म शरीर में है । उसमें अतीन्द्रिय क्षमताओं के आधार विद्यमान हैं । लघु मस्तिष्क शिर के पिछले भाग में है । अचेतन की विशिष्ट क्षमताऐं उसी स्थान पर मानी जाती हैं । मेरुदण्ड के कण्ठ की सीध पर अवस्थित विशुद्धचक्र इस चित्त संस्थान को प्रभावित करता है । तदनुसार

चेतना की अति महत्वपूर्ण परतों पर नियन्त्रण करने और विकसित एवं परिष्कृत कर सकने के सूत्र हाथ में आ जाते हैं । नादयोग के माध्यम से दिव्य श्रवण जैसी कितनी ही परोक्षानुभूतियाँ विकसित होने लगती हैं ।

सहस्रार मस्तिष्क के मध्य भाग में है । शरीर संरचना में इस स्थान पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थियों से सम्बन्ध रैटिकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम का अस्तित्व है । वहाँ से जैवीय विद्युत का स्वंय भू प्रवाह उभरता है । वे धारायें मस्तिष्क के अगणित केन्द्रों की ओर दौड़ती हैं । इसमें से छोटी-छोटी चिन्गारियाँ तरंगों के रूप में उड़ती रहती हैं । उनकी संख्या की सही गणना तो नहीं हो सकती, पर वे हैं हजारों । इसलिए हजार या हजारों का उद्‌बोधक 'सहस्र' शब्द प्रयोग में लाया जाता है । सहस्रार चक्र का नामकरण इसी आधार पर हुआ है । सहस्र फन वाले शेषनाग की परिकल्पना का यही आधार है । यह संस्थान ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ सम्पर्क साधने में अग्रणी है, इसलिए उसे ब्रह्म रन्ध्र या ब्रह्मलोक भी कहते हैं । रेडियो एरियल की तरह हिन्दू धर्मानुयायी इस स्थान पर शिखा रखाते हैं और उसे शिर रूपी दुर्ग पर आत्म सिद्धान्तों को स्वीकृत किए जाने की विजय पताका बताते हैं । आज्ञा चक्र को सहस्रार का उत्पादन केन्द्र कह सकते हैं ।

सभी चक्र सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर स्थित हैं तो भी वे समूचे नाड़ी मण्डल को प्रभावित करते हैं । स्वचालित और ऐच्छिक दोनों ही संचार प्रणालियों पर इनका प्रभाव पड़ता है । अस्तु शरीर संस्थान के अवयवों को चक्रों द्वारा निर्देश पहुँचाये जा सकते हैं । साधारणतया यह कार्य अचेतन मन करता है और उस पर सचेतन मस्तिष्क का कोई बस नहीं चलता है । रोकने की इच्छा करने पर भी रक्त संचार रुकता नहीं और तेज करने की इच्छा होने पर भी उसमें सफलता नहीं मिलती । अचेतन बड़ा दुराग्रही है । सचेतन की बात सुनने की उसे फुर्सत नहीं । उसकी मन मर्जी ही चलती है । ऐसी दशा में मनुष्य हाथ-पैर चलाने जैसे छोटे-मोटे काम ही इच्छानुसार कर पाता है । शरीर की अनैच्छिक क्रिया पद्धति के सम्बन्ध में वह लाचार रहता है । ऐसी दशा में व्यक्तित्व को परिष्कृत करने वाली और शरीर तथा मनःसंस्थान में अभीष्ट परिवर्तन करने वाली आकांक्षा प्रायः अपूर्ण एवं निष्फल बनी रहती है । चक्र संस्थान को यदि जागृत तथा नियन्त्रित किया जा सके तो आत्म जगत पर अपना अधिकार हो जाता है । यह आत्म विजय

अपने ढंग की अद्‌भुत सफलता है । इसका महत्व तत्वदर्शियों ने विश्व विजय से भी अधिक महत्वपूर्ण बताया है । विश्व विजय कर लेने पर दूरवर्ती क्षेत्रों से समुचित लाभ उठाना सम्भव नहीं हो सकता, उसकी सम्पदा का उपभोग, उपयोग कर सकने की सामर्थ्य भी कहाँ है ? किन्तु आत्म विजय के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । उसका पूरा-पूरा लाभ स्वयं ही उठाया जा सकता है । उस आधार पर बहिरंग और अन्तरंग क्षेत्रों की सम्पदा का प्रचुर लाभ अपने आप को मिल सकता है ।

मेरुदण्ड को शरीर शास्त्री स्पाइनल कालम कहते हैं । स्पाइनल एक्सिस एवं वर्टिब्रल कॉलम-शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त होते हैं । मोटे तौर पर यह ३३ अस्थि घटकों से मिलकर बनी हुई पोली दण्डी भर है । इन हड्डियों को पृष्ठ वंश-कशेरुका या 'वर्टिब्रा' कहते हैं । स्थिति के अनुरूप इनका पाँच भागों में विभाजन किया जा सकता है ।

(१) ग्रीवा प्रदेश-सर्वाइकल रीजन-७ अस्थि खण्ड (२) वक्ष प्रदेश-डार्सल रीजन-१२ अस्थि खण्ड (३) कटि प्रदेश-लम्बर रीजन-५ अस्थि खण्ड (४) त्रिक या वस्तिगह्वर-सेक्रल रीजन-५ अस्थि खण्ड (५) चेंचु प्रदेश-काक्सीजियल रीजन-४ अस्थि खण्ड ।

मेरु दण्ड पोला है । उससे अस्थि खण्डों के बीच में होता हुआ यह छिद्र नीचे से ऊपर तक चला गया है । इसी के भीतर सुषुम्ना नाड़ी विद्यमान है । मेरुदण्ड के उपर्युक्त पाँच प्रदेश सुषुम्ना में अवस्थित पाँच चक्रों से सम्बन्धित हैं । (१) मूलाधार चक्र-चेंचु प्रदेश, (२) स्वादिष्ठान-त्रिक प्रदेश (३) मणिपूर-कटि प्रदेश (४) अनाहत-वक्ष प्रदेश (५) विशुद्धि-ग्रीवा प्रदेश, छठे आज्ञा चक्र का स्थान मेरुदण्ड में नहीं आता । सहस्रार का सम्बन्ध भी रीढ़ की हड्डी से सीधा नहीं है । इतने पर भी सूक्ष्म शरीर का सुषुम्ना मेरु दण्ड पाँच रीढ़ वाले और दो बिना रीढ़ वाले सभी सात चक्रों को एक ही श्रृंखला में बाँधे हुए हैं । सूक्ष्म शरीर की सुषुम्ना में यह सातों चक्र जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर पूरी तरह सम्बद्ध हैं ।

यहाँ यह तथ्य भलीभाँति स्मरण रखा जाना चाहिए कि शरीर विज्ञान के अन्तर्गत वर्णित प्लेक्सस, बाडी गुच्छक और चक्र एक नहीं हैं । यद्यपि उनके साथ पारस्परिक तारतम्य जोड़ा जा सकता है । यों इन गुच्छकों की भी शरीर में विशेष स्थिति है और उनकी कायिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली प्रतिक्रिया होती रहती है ।

शरीर शास्त्र के अनुसार प्रमुख नाड़ी गुच्छकों (प्लेक्ससेज) में १३ प्रधान हैं । उनके नाम हैं–(१) हिपेटिक (२) सर्वाइकल (३) ब्रांकियल (४) कावसीजियल (५) लम्बर (६) सेक्रल (७) कार्डियल (८) इपिगेस्ट्रिक (९) इसोफैजियल (१०) फेरेन्जियल (११) पलमोनरी (१२) लिंगुअल (१३) प्रोस्टेटिक ।

इन गुच्छकों में शरीर यात्रा में उपयोगी भूमिका सम्पन्न करते रहने के अतिरिक्त कुछ विलक्षण विशेषताऐं भी पाई जाती हैं । उनसे यह प्रतीत होता है कि उनके साथ कुछ रहस्यमय तथ्य जुड़े हुए हैं । यह सूक्ष्म शरीर के दिव्य चक्रों के सान्निध्य से उत्पन्न होने वाला प्रभाव ही कहा जा सकता है ।

'चक्र' शक्ति संचरण के एक व्यवस्थित, सुनिश्चित क्रम को कहते हैं । वैज्ञानिक क्षेत्र में विद्युत, ध्वनि, प्रकाश सभी रूपों में शक्ति के संचार क्रम की व्याख्या चक्रों (साइकिल्स) के माध्यम से ही की जाती है । इन सभी रूपों में शक्ति का संचार, तरंगों के माध्यम से होता है । एक पूरी तरंग बनने के क्रम को एक चक्र (साइकिल) कहते हैं । एक के बाद एक तरंग, एक के बाद एक चक्र (साइकिल) बनने का क्रम चलता रहता है और शक्ति का संचरण होता रहता है । शक्ति की प्रकृति (नेचर) का निर्धारण इन्हीं चक्रों के क्रम के आधार पर किया जाता है । औद्योगिक क्षेत्र में प्रयुक्त विद्युत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियम है कि वह ५० साइकिल्स प्रति सैकिण्ड के चक्र क्रम की होनी चाहिए । विद्युत की मोटरों एवं अन्य यन्त्रों को उसी प्रकृति की बिजली के अनुरूप बनाया जाता है । इसीलिए उन पर हार्सपावर, वोल्टेज आदि के साथ ५० साइकिल्स भी लिखा रहता है । अस्तु शक्ति संचरण के साथ 'चक्र' प्रक्रिया जुड़ी ही रहती है वह चाहे स्थूल विद्युत शक्ति हो अथवा सूक्ष्म जैवीय विद्युत शक्ति ।

नदी प्रवाह में कभी–कभी कहीं भँवर पड़ जाते हैं । उनकी शक्ति अद्भुत होती है । उनमें फँसकर नौकाऐं अपना सन्तुलन खो बैठती हैं और एक ही झटके में उल्टी डूबती दृष्टिगोचर होती हैं । सामान्य नदी प्रवाह की तुलना में इन भँवरों की प्रचण्डता सैकड़ों गुनी अधिक होती है । शरीरगत विद्युत प्रवाह को एक बहती हुई नदी के सदृश माना जा सकता है और उसमें जहाँ तहाँ पाये जाने वाले चक्रों की 'भँवरों' से तुलना की जा सकती है ।

गर्मी की ऋतु में जब वायुमण्डल गरम हो जाता है तो जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े 'चक्रवात'-साइक्लोन उठने लगते हैं। वे नदी के भँवरों की तरह ही गरम हवा के कारण आकाश में उड़ते हैं। उनकी शक्ति देखते ही बनती है। पेड़ों को, छतों को छप्परों को उखाड़ते-उछालते वे बवण्डर की तरह जिधर-तिधर भूत-बेताल की तरह नाचते-फिरते हैं। साधारण पवन प्रवाह की तुलना में इन टारनेडो (चक्रवातों) की शक्ति भी सैकड़ों गुनी अधिक होती है।

शरीरगत विद्युत शक्ति का सामान्य प्रवाह यों सन्तुलित ही रहता है, पर कहीं-कहीं उसमें उग्रता एवं वक्रता भी देखी जाती है। हवा कभी-कभी बाँस आदि के झुरमुटों से टकरा कर कई तरह की विचित्र आवाजें उत्पन्न करती है। रेलगाड़ी, मोटर और द्रुतगामी वाहनों के पीछे दौड़ने वाली हवा को भी अन्धड़ की चाल चलते देखा जा सकता है। नदी का जल कई जगह ऊपर से नीचे गिरता है -चट्टानों से टकराता है तो वहाँ प्रवाह में व्यतिक्रम, उछाल, गर्जन-तर्जन की भयंकरता दृष्टिगोचर होती है। शरीरगत सूक्ष्म चक्रों की विशेष स्थिति भी इसी प्रकार की है। यों नाड़ी गुच्छकों-प्लेक्सस में भी विद्युत संचार और रक्त प्रवाह के गति क्रम में कुछ विशेषता पाई जाती है। पवन प्रवाह पर नियन्त्रण करने के लिए नावों पर पतवार बाँधे जाते हैं उनके सहारे नाव की दिशा और गति में अभीष्ट फेर कर लिया जाता है। पनचक्की के पंखों को गति देकर आटा पीसने, जल-कल चलाने आदि के काम लिए जाते हैं। जल प्रपात जहाँ ऊपर से नीचे गिरता है वहाँ उस प्रपात तीव्रता के वेग को बिजली बनाने जैसे कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। समुद्री ज्वार भाटों से भी बिजली बनाने का काम लिया जा रहा है। ठीक इसी प्रकार शरीर के विद्युत प्रवाह में जहाँ चक्र बनते हैं वहाँ उत्पन्न उग्रता को कितने ही अध्यात्म प्रयोजनों में काम लाया जाता है।

चक्र कितने हैं ? इनकी संख्या निर्धारण करने में मनीषियों का मतभेद स्पष्ट है। विलय तंत्र में इड़ा और पिंगला की विद्युत गति से उत्पन्न उलझन गुच्छकों को चक्रों की संज्ञा दी गई है और उनकी संख्या पाँच बताई गई है। मेरुदण्ड में वे पाँच की ही संख्या में हैं। मस्तिष्क के अग्रभाग में अवस्थित आज्ञा चक्र को भी उनमें सम्मिलित कर लेने पर वे छः हो जाते हैं और हठयोग की गणना के अनुसार छः की संख्या पूरी हो जाती है।

सातवाँ सहस्रार है । इसे चक्रों की बिरादरी में जोड़ने न जोड़ने पर विवाद है । सहस्रार—नाभिक है । उसे इसी बिरादरी में सम्मिलित रखने न रखने के दोनों ही पक्षों के साथ तर्क है । इसलिए जहाँ छः की गणना है वहाँ सात का भी उल्लेख बहुत स्थानों पर हुआ है ।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाती । चक्रों की संख्या सूक्ष्म शरीर में बहुत बड़ी है । इन्हें १०८ तक गिना गया है । छोटे होने के कारण उन्हें उपत्यिका कहा गया है और जपने की माला में उतने ही दाने रखने की परम्परा चली है । इनमें से कितने ही लघु चक्र ऐसे हैं जिन्हें जागृत करने वालों ने प्रख्यात चक्रों से भी शक्तिशाली पाया है । चन्द्रमा की गणना ग्रहों में नहीं उपग्रहों में होती है । फिर भी अपनी पृथ्वी के लिए पूर्ण समझे जाने वाले ग्रहों में कम नहीं अधिक ही उपयोगिता है ।

तन्त्र ग्रन्थों में ऐसे चक्रों का वर्णन है जिनके नाम और स्थान षटचक्रों से भिन्न हैं । जहाँ उनकी संख्या पाँच बताई गई है वहाँ पाँच कोशों का नहीं वरन् भिन्न आकृति—प्रकृति के अतिरिक्त चक्रों का वर्णन है । (१) त्रिकूट (२) श्रीहाट (३) गोल्लाट (४) औट पीठ (५) भ्रमर गुफा इनके नाम हैं । इनकी व्याख्या एवं स्वरूप हठयोग में वर्णित षट्चक्रों से भिन्न हैं ।

इसी तरह कहीं—कहीं तन्त्र ग्रन्थों में उनकी संख्या छः से अधिक कही गई है—

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम पंचकम् । सम्यगेतन्न जानाति स योगी नाम धारकः ।

—सिद्ध सिद्धान्त पद्धति

नव चक्र, त्रिलक्ष, सोलह आधार, पाँच आकाश, वाले सूक्ष्म शरीर को जो जानता है उसी को योग में सिद्धि मिलती है ।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्यमयः कोशःस्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।

—अथर्ववेद

आठ चक्र, नव द्वार वाली यह अवोह या नगरी स्वर्ण कोश और स्वर्गीय ज्योति से आवृत्त है ।

शक्ति सम्मोहन तन्त्र में उनकी संख्या ९ मानी गयी है । कुण्डलिनी को 'नव चक्रात्मिका देवी' कहा गया है । नौ चक्र इस प्रकार गिनाये

गये हैं । (१) आनन्द चक्र (२) सिद्धि चक्र (३) आरोग्य चक्र (४) रक्षा चक्र (५) सर्वार्थ चक्र (६) सौभाग्य चक्र (७) संशोक्षण चक्र (८) शाप चक्र (९) मोहन चक्र । यह नामकरण उनकी विशेषताओं के आधार पर किया गया है । यह कहीं हैं, इसकी चर्चा में मात्र तीन को षट्चक्रों की तरह बताया गया है और शेष अन्यान्य स्थानों पर अवस्थित बताये गये हैं ।

नौ के वर्णन में भी नाम और स्थानों की भिन्नता मिलती है । एक स्थान पर उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं । (१) ब्रह्म चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) नाभि चक्र (४) हृदय चक्र (५) कण्ठ चक्र (६) तालु चक्र (७) भ्रू चक्र (८) निर्वाण चक्र (९) आकाश चक्र बताये गये हैं । यह उल्लेख सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में विस्तार पूर्वक मिलता है ।

संख्या जो भी मानी जाये उन सबका एक समन्वय शक्ति पुञ्ज लोगोज (LOGOS) भी है जिसकी स्थूल सूर्य के समान ही किन्तु अपने अलग ढंग की रश्मियाँ निकलती हैं । सूर्य किरणों में सात रंग अथवा ऐसी विशेषताऐं होती हैं जिनका स्वरूप, विस्तार, कार्यक्षेत्र सीमित है, पर इस आत्म-तत्व के सूर्य का प्रभाव और विस्तार बहुत व्यापक है । वह प्रकृति के प्रत्येक अणु को नियन्त्रित एवं गतिशील रखता है साथ ही चेतन संसार की विधि व्यवस्था को सँभालता सँजोता है । इसे पाश्चात्य तत्व वेत्ता सन्स आफ फोतह (Sons of fotah) कहते हैं और प्रतिपादित करते हैं कि विश्व-व्यापी शक्तियों का मानवीकरण इसी केन्द्र संस्थान द्वारा हो सका है ।

सामान्य शक्ति धाराओं में प्रधान गिनी जाने वाली (१) गति (२) शब्द (३) ऊष्मा (४) प्रकाश (५) संयोग (Cohesion) (६) विद्युत (७) चुम्बक यह सात हैं । इन्हें सात चक्रों का प्रतीक ही मानना चाहिए ।

कुण्डलिनी शक्ति को कई विज्ञान वेत्ता विद्युत द्रव पदार्थ (Electric Fluid) या नाड़ी शक्ति कहते हैं ।

इस निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त परमात्मा की छः चेतन शक्तियों का अनुभव हमें होता है । यों शक्ति पुञ्ज पर ब्रह्म की अगणित शक्ति धाराओं का पता पा सकना, मनुष्य की सीमित बुद्धि के लिए असम्भव है । फिर भी हमारे दैनिक जीवन में जिनका प्रत्यक्ष सम्पर्क संयोग रहता है उनमें प्रमुख यह हैं-(१) परा शक्ति (२) ज्ञान शक्ति (३) इच्छा शक्ति (४) क्रिया शक्ति (५) कुण्डलिनी शक्ति (६) मातृका शक्ति (७) गुह्य । इन सबके सम्मिलित शक्ति पुञ्ज को ईश्वरीय प्रकाश अथवा सूक्ष्म प्रकाश (Astral

Light) कह सकते हैं । यह सातवीं शक्ति है । कोई चाहे तो इस शक्ति पुञ्ज को उपरोक्त छः शक्तियों का उद्गम भी कह सकता है । इन सबको हम चैतन्य सत्ताऐं कह सकते हैं । उसे पवित्र अग्नि (Sacred fire) के रूप में भी कई जगह वर्णित किया गया है, और कहा गया है कि उसमें से आग ऊष्मा तो नहीं पर प्रकाश किरणें निकलती हैं और वे शरीर में विद्यमान ग्रन्थियों ग्लैण्ड्स केन्द्रों (Center) और गुच्छकों को असाधारण रूप से प्रभावित करती है । इससे मात्र शरीर या मस्तिष्क को ही बल नहीं मिलता वरन् समग्र व्यक्तित्व की महान सम्भावना को और अग्रसर करती है ।

इन सात चक्रों में अवस्थित सात उपरोक्त शक्तियों का उल्लेख साधना ग्रन्थों में अलंकारिक रूप में हुआ है । उन्हें सात लोक, सात समुद्र, सात द्वीप, सात पर्वत, सात ऋषि आदि नामों से चित्रित किया गया है । इसी चित्रण में यह संकेत है कि इन चक्रों में किन–किन स्तर के विराट् शक्ति स्रोतों के साथ सम्बन्ध है । बीज रूप से कौन महान सामर्थ्य इन चक्रों में विद्यमान है और जागृत होने पर उन चक्र संस्थानों के माध्यम से मनुष्य का व्यक्तित्व छोटे से कितना विराट और विशाल हो सकता है । टोकरी भर बीज से लम्बा–चौड़ा खेत हरा–भरा हो सकता है । अपने बीज भण्डार में सात टोकरी भरा–सात किस्म का अनाज सुरक्षित रखा है । चक्र एक प्रकार से शीत गोदाम–कोल्ड स्टोर हैं और इन पर ताला जड़ा हुआ है । इन सात तालों की एक ही चाबी है । उसका नाम 'कुण्डलिनी' । जब उसके जागरण की साधना की जाती है तो यह ताले खुलते हैं । बीज बाहर लाया जाता है । शरीर रूपी साढ़े तीन एकड़ के खेत में वह बोया जाता है । यह छोटा खेत अपनी सुसम्पन्नता को अत्यधिक व्यापक बना देता है । पुराण कथा के अनुसार राजा बलि का राज्य तीनों लोकों में था । भगवान् ने वामन रूप में उससे साढ़े तीन कदम भूमि की भिक्षा माँगी । बलि तैयार हो गये । तीन कदम में तीन लोक और आधे कदम में बलि का शरीर नाप कर विराट् ब्रह्म ने उस सबको अपना लिया । हमारा शरीर साढ़े तीन हाथ लम्बा है । चक्रों के जागरण में यदि उसे लघु से महान–अण्ड से विभु कर लिया जाय तो उसकी साढ़े तीन हाथ की लम्बाई–साढ़े तीन एकड़ जमीन न रहकर लोक–लोकान्तरों तक विस्तृत हो सकती है और उस उपलब्धि की याचना करने के लिए भगवान वामन रूप धारण करके हमारे दरवाजे पर हाथ पसारे हुए उपस्थित हो सकते हैं ।

षट्चक्र ब्रह्माण्ड व्यापी शक्तियों के रेडियो केन्द्र

बाँसुरी में सात छिद्र सात स्वर कहलाते हैं, जब उनमें से आरोह-अवरोह क्रम में वायु फूँकी और उन छिद्रों का व्यवस्थित संचालन किया जाता है, तो एक ऐसी मधुर स्वर लहरी का गुञ्जार होता है, जिसे सुनकर हर कोई मुग्ध हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण की बाँसुरी के स्वर सुनकर समस्त ब्रज भाव विभोर हो उठता था । ऐसी ही एक बाँसुरी मनुष्य के शरीर में षट्चक्रों के रूप में भी विद्यमान है । सामान्य अवस्था में यह चक्र प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं, किन्तु गायत्री उपासना से जब उनका जागरण होता है तो साधकों को एक ऐसा अनहद् नाद सुनाई पड़ता है जिससे वह आत्म-विभोर हो उठता है, उसे ऐसी तृप्ति के दर्शन होते हैं, जिसके आगे संसार की कोई भी नियामत तुच्छ लगती है ।

चक्र शब्द का अर्थ पहिया नहीं नियमित गति क्रम भी होता है । भाग्य चक्र, जीवन-मरण चक्र, सुदर्शन चक्र आदि संयुक्त नामों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गाड़ी के पहिए की तरह जो भी वस्तु या स्थिति घूमने वाली हो, उसके लिए चक्र शब्द का प्रयोग किया जाता है । पृथ्वी सहित सौर मण्डल के ग्रह एक निर्धारित कक्षा में घूमते हैं, परमाणु भी अपने छोटे सौर मण्डल के साथ अपनी धुरी पर घूमते रहते हैं । दिन और रात की तरह शरीर में रक्ताभिषरण श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया में भी आवागमन का चक्र चलता रहता है । गति और प्रगति का जो क्रम संसार में सर्वत्र दीख पड़ता है, वही प्रकारान्तर से हमारे शरीर के विविध क्रिया-कलापों पर भी लागू होता है । ऐसे ही क्रिया-कलापों में एक विश्व-व्यापी प्राणशक्ति में से कुछ अंश शरीर में ग्रहण करने और छोड़ने का क्रम चलाने के शक्ति संस्थान विद्यमान हैं, जिन्हें योग की भाषा में चक्र कहा जाता है ।

नदी और नहरों के किनारे आटा पीसने की पनचक्कियाँ लगी होती हैं । बहता हुआ पानी जहाँ ऊपर से नीचे गिरता है वहाँ उस गिरने से उत्पन्न होने वाले दबाव से कुछ चक्के सम्बन्धित कर दिये जाते हैं और वे उस दबाव के कारण घूमने लगते हैं । इस घुमाव से चक्की के पहिए घूमने लगते हैं और आटा पीसने की मशीन अपना काम करने लगती है । विश्वव्यापी प्राणशक्ति का प्रवाह एक बड़ी नदी में बहने वाले जल

प्रवाह की तरह है । मनुष्य शरीर की तुलना प्रपात से की जा सकती है । शरीर में विद्यमान कुछ सूक्ष्म चक्र इस शक्ति प्रपात के साथ जुड़े रहने के कारण उस प्रवाह जन्य दबाव को अपने भीतर ग्रहण करते हैं और वे स्वयं घूमने लगते हैं । चक्रों का परिभ्रमण सूक्ष्म शरीर के सारे अन्तरंग क्रिया-कलाप को घुमाता है और हमारी आन्तरिक हलचलें अपना काम करने लगती हैं । विश्वव्यापी प्राणशक्ति की विद्युत भी हमारे सूक्ष्म चक्र ग्रहण करते हैं । जैसे बड़े बिजली घर से उत्पन्न होने वाली शक्ति को छोटे ट्रांसफार्मर अपने में ग्रहण कर लेते हैं और उससे अपने क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करते हैं । उसी प्रकार हमारे सूक्ष्म शरीर में विद्यमान चक्र-विराट् प्राण चक्र से अपनी क्षमता के अनुरूप शक्ति प्राप्त करते हैं और उससे स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय, कोशों की गतिविधियाँ संचालित रख सकने की क्षमता प्राप्त करते हैं । इसी क्षमता से वे स्वयं विद्युत मोटरों की तरह घूमते हैं और शरीर सत्ता के विभिन्न घटकों को गति प्रदान करते हैं ।

सामान्यतया गति के तीन रूप हैं (१) चक्राकार-गोल (२) कुण्डल्याकार-पेच की चूड़ियों की तरह (३) तरंगाकार-लहरों की तरह । साधारण जीवन क्रम में हम बाह्य जगत की तरंग प्रक्रिया से लाभान्वित होते हैं । कानों में शब्द, त्वचा पर स्पर्श, जिह्वा पर रस, नाक में गन्ध, नेत्रों में रूप का अवगृहण तरंगों के रूप में ही होता है । हम प्रायः तरंगें ही फेंकते और तरंगें ही ग्रहण करते हैं । हमारी क्रियायें एवं विचारणाऐं अन्तरिक्ष में जो हलचलें उत्पन्न करती हैं वे तरंग रूप में ही आगे बढ़ती हैं और व्यक्तियों तथा वस्तुओं को प्रभावित करती हैं । इस प्रकार हम व्यापक शक्ति समुद्र में से एक-तिहाई का ही उपयोग कर पाते हैं । दो धारायें तो अछूती ही बनी रहती हैं जबकि उनकी क्षमता और भी अधिक है ।

दो तरंगें शरीर के अन्तःक्षेत्र में गतिशील रहती हैं । मूलाधार चक्र से मेरुदण्ड मार्ग में जो शक्ति प्रवाह चलता है वह पेच की चूड़ी की तरह कुण्डल्याकार होता है । इसलिए धारा को कुण्डलिनी कहते हैं । साधारण बन्दूकों में तो ऐसे ही गोल छेद की पोली नली होती हैं,पर बढ़िया बन्दूकों का नली का भीतरी भाग चूड़ीदार होता है । गोली दागते समय उसे पेंचदार घुमाव की गति मिलती है फलतः वह लक्ष्य तक इसी गति से घूमती हुई पहुँचती है । जहाँ लगती है वहाँ छिद्र तो सामान्य होता है,

पर आगे वह अपनी पेचदार चाल के कारण बड़ा छिद्र कर देती है । मूलाधार से उठने वाले पेचदार प्रवाह भी ऐसे ही होते हैं और वे आगे बढ़ते-बढ़ते अधिकाधिक सशक्त होते जाते हैं ।

मस्तिष्क में उठने वाले विद्युत प्रवाह गोलाकार होते हैं । अस्तु उसे सूर्य, चन्द्र जैसे गोल ग्रह पिण्डों की उपमा दी जाती है, बूँदें भी गोल होती हैं । उसे उस प्रवाह के अमृत बिन्दुओं के समतुल्य माना जाता है और सोमरस से, स्वाति बूँदों से स्मरण किया जाता है । चातक की तृप्ति स्वाति वर्षा में होती है । स्वांति बूँदों से सीप में मोती, बाँस में वंश-लोचन, केला में कपूर होने की किम्वदन्तियाँ पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से सही नहीं हैं । इस अलंकार में मस्तिष्क में झरने वाले प्रवाह को ही अमृत वर्षा के नाम से पुकारा गया है । सीप, चातक, केला, बाँस आदि-मूलाधार संस्थान की ओर इंगित किया गया है । मस्तिष्क और काम-बीज के बीच परस्पर आकर्षण तो है पर मिलन नहीं हो पाता । इस वियोग की अतृप्ति ही जीवन क्रम में विक्षोभ, असंतोष एवं अभाव भरे रहती है । यदि दोनों का मिलन हो सके तो इस संयोग का प्रतिफल आनन्द एवं उल्लास बनकर सामने आता है । यही स्थिति उत्पन्न करना कुण्डलिनी जागरण का उद्देश्य है ।

रेडियो यंत्र में लगी सुई को अलग नम्बरों पर लगा देने से उसमें लगे बैण्ड बदल देने से अलग-अलग ब्राडकास्ट स्टेशनों का सम्बन्ध बनता और बदलता है । रेडियो यन्त्र में ऐसी व्यवस्था है कि उसके विभिन्न पुर्जे थोड़ी फेर बदलने से अन्तरिक्ष में विभिन्न फ्रीक्वैन्सियों पर चल रहे शब्द प्रवाहों को पकड़ सकें । इसी व्यवस्था के आधार पर हम अपने रेडियो पर अभीष्ट प्रोग्राम सुन सकते हैं । मेरुदण्ड में अवस्थित चक्रों में ऐसी विशेषता है कि वे अनन्त आकाश में बह रही विभिन्न स्तर की चेतनात्मक शक्ति धाराओं के साथ सम्पर्क बना सकें । इन्हीं धाराओं को देवसत्ता कहते हैं । चक्रों के अधिपति विभिन्न देवता बताए गये हैं । इनका तात्पर्य है कि चक्रों के साथ चेतन जगत की महत्वपूर्ण फ्रीक्वैन्सियाँ सम्बन्धित हैं । उनका सम्पर्क एवं अनुदान प्राप्त कर सकना हर दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी ही सिद्ध हो सकता है ।

हमारा रेडियो यन्त्र ग्रहण करने का एक ही कार्य सम्पन्न कर पाता है । उसमें प्रेषण की, ब्राडकॉस्टिंग की क्षमता नहीं है । प्रेषण और ग्रहण का दुहरा काम कर सकने की क्षमता मेरुदण्ड स्थित चक्र संस्थान

में पाई जाती है । वे अन्तरिक्ष के विभिन्न क्षेत्रों एवं स्तरों के साथ सम्पर्क बनाने एवं आदान-प्रदान का द्वार खोलने में समर्थ हो सकते हैं । प्रसुप्त चक्र अविज्ञात एवं अनावश्यक स्थिति में उपेक्षित पड़े रहते हैं, पर यदि उन्हें जागृत किया जा सके तो जीवन विकास में महत्वपूर्ण उपयोग हो सकता है ।

संसार को परमाणुओं से बना हुआ एक खिलौना कहें तो अत्युक्ति न होगी । कुछ सीमित तत्वों के परमाणु ही विराट् जगत में परिभ्रमण करते और नाना प्रकार के ब्रह्माण्ड पदार्थ और परिस्थितियों की उत्पत्ति करते हैं । जीवन की सात अवस्थायें भी वस्तुतः इन परमाणुओं के संयोग से विनिर्मित सृष्टि क्रम ही है ।

पाश्चात्य अध्यात्मवेत्ता चेतना के सात शरीर मानते हैं । एक प्रत्यक्ष छः अप्रत्यक्ष । (१) भौतिक शरीर को वे (फिजिकल बॉडी) कहते हैं । इससे आगे के क्रमशः (२) आकाश शरीर (इथरिक बॉडी) (३) सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी) (४) मनस् शरीर (मेन्ट बॉडी) (५) आत्म शरीर (स्प्रिचुअल बॉडी) (६) ब्रह्म शरीर (कॉस्मिक बॉडी) (७) निर्वाण शरीर इसे वे शरीर कहते हुए भी शरीर न कहकर "बीइंग एण्ड नोनबीइंग" की संज्ञा देते हैं । यह 'अनिर्वचनीय जैसा शब्द है ।

(१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत (५) विशुद्धि (६) आज्ञा चक्र-यह षट्चक्र वर्ग में आते हैं । सातवाँ सहस्रार इनका अधिपति एवं सूत्र सञ्चालक है । मानवीय काया में अवस्थित यही परम तेजस्वी सप्त ऋषि हैं । जिनकी पीठ पर-जिनके समर्थन में सात ऋषि होंगे, उन्हें किसी प्रकार का अनुभव न होगा । निद्रित स्थिति में तो मनुष्य भी मृत तुल्य पड़ा रहता है । ऋषियों का अस्तित्व आत्मसत्ता के अन्तर्गत होते हुए भी यदि वे प्रसुप्त स्थिति में पड़े हैं तो उनका समुचित लाभ मिल सकना सम्भव न होगा ।

आत्म सूर्य के सप्त अश्व प्रमुख चेतना केन्द्रों के रूप में वर्णन किऐ गये हैं-(१) प्राण (२) चक्षु (३) जिह्वा (४) त्वचा (५) कान (६) मन (७) बुद्धि इन सातों को अश्व संज्ञा दी गई है ।

दिव्य जीव सत्ता में इन सातों का वर्णन इस प्रकार मिलता है । (१) देव (२) ऋषि (३) गन्धर्व (४) पन्नग (५) अप्सरा (६) यज्ञ (७) राक्षस । वैदिक देवताओं में इन्हीं का दूसरे रूप में वर्णन

है–(१) प्रजापति (२) अर्यमा (३) पूषा (४) त्वष्टा (५) वरुण (६) इन्द्र (७) मित्र । छन्द शास्त्र की दृष्टि से इनका उल्लेख जिन सात छन्दों में किया गया है वे (१) गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप (४) वृहती (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप और (७) जगती है ।

गान विद्या के सप्त स्वर प्रसिद्ध हैं–स, रे, ग, म, प, ध, नि के नाम से इन्हें संगीत शास्त्र के आरम्भिक छात्र भी जानते हैं । सूर्य की सात किरणें (१) बैंगनी (२) जामुनी (३) नीले (४) हरे (५) पीले (६) नारंगी (७) लाल रंग की है । इन्हीं रंगों के प्रभाव से पदार्थों और प्रणियों में तरह–तरह के उभार एवं उतार–चढ़ाव आते रहते हैं ।

आयुर्वेद के अनुसार अपने प्रत्यक्ष शरीर में सप्त धातुऐं हैं–(१) रस (२) रक्त (३) मांस (४) मज्जा (५) अस्थि (६) मेरु (७) शुक्र । इन्हीं के सहारे काया का क्रिया–कलाप चलता है । सूक्ष्म शरीर का ढाँचा भी सात आधारों पर ही खड़ा है । (१) पाँच तत्व (२) पाँच प्राण (३) पाँच ज्ञानेन्द्रिय (४) पाँच कर्मेन्द्रियाँ (५) पाँच तन्मात्राऐं (६) अन्तःकरण चतुष्टय (७) आकांक्षा संस्कार ।

स्थूल शरीर के आधारों को प्रत्यक्ष आँखों से देखा जा सकता है । सूक्ष्म शरीर के आधार भी सूक्ष्म होते हैं, अस्तु वे दृष्टिगोचर तो नहीं होते पर अस्तित्व उन सबका बना रहता है । भाप बनकर आकाश में उड़ जाने पर भी पदार्थ बना तो रहता है, पर उसका अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता । सूक्ष्म शरीर की सत्ता भूत–प्रेतों के रूप में, स्वप्न में, छाया पुरुष में, स्वर्ग–नरक भोगने में स्थूल शरीरधारियों की तरह ही काम करती है, पर उसका अस्तित्व स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता । दिव्यात्माऐं भी ऐसा ही सूक्ष्म कलेवर धारण करके इतना काम करती है जो स्थूल शरीर की तुलना में अत्यधिक होता है ।

षट्चक्रों का नाम भ्रामक है । वस्तुतः उन्हें सप्तचक्र ही कहना चाहिए । सहस्रार को इस चक्र श्रृंखला से अलग नहीं किया जा सकता । प्रत्येक चक्र भी सात आधारों से बना है । उसके स्वरूप निर्धारण की जो व्याख्या विवेचना है उसमें प्रत्येक के सात–सात विवरण दिये गये हैं– (१) तत्व बीज (२) वाहन (३) अधिदेवता (४) दल (५) यन्त्र (६) शब्द (७) रंग । इन्हीं विशेषताओं की भिन्नता से उनके अलग–अलग विभेद किये गये हैं । अन्यथा बाहर से तो उनकी आकृति एक जैसी ही है । उनकी क्षमताओं, विशेषताओं, और प्रतिक्रियाओं का

विवरण इन्हीं सात संकेतों के रूप में समझा जा सकता है ।

शरीर एक समूचा ब्रह्माण्ड है । जो कुछ इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में है उसे बीज रूप से मानवी पिण्ड में संजो दिया गया है । साधना द्वारा इन बीजों को अंकुरित और पल्लवित किया जाता है । ब्रह्माण्ड और पिण्ड की सत्ता एक जैसी बताते हुए कहा गया है ।

ब्रह्माण्ड संत्तके देहे यथा देशं व्यवस्थितः ।

—शिव संहिता

यह शरीर ब्रह्माण्ड संज्ञक है । जो ब्रह्माण्ड में है वही इस शरीर में भी मौजूद है ।

नदी, पर्वत, समुद्र, द्वीप आदि भी सात—सात ही गिनाये गये हैं । भूगोल के हिसाब से इनकी संगति नहीं बैठती । संसार में हजारों नदियाँ हैं । इसी प्रकार पर्वत भी सैकड़ों हैं । पृथ्वी पर महाद्वीप पाँच हैं । छोटे द्वीपों की संख्या तो लाखों तक पहुँचेगी । समुद्र भी सात कहाँ हैं । इस प्रकार भौगोलिक गणना के आधार पर यह ब्रह्माण्ड विवरण सही नही बैठता । किन्तु पिण्ड ब्रह्माण्ड की प्रमुख शक्तियों को इन रूपकों के माध्यम से समझाने वाले अलंकारिक संकेत का रहस्य समझा जा सके तो यह सभी सप्तक सही बैठते हैं ।

सात पर्वत यह हैं—(१) विद्रुम (२) हिमिशैल (३) द्युतिमान (४) पुष्पवान (५) कुशेशय (६) हरिशैल (७) मन्दराचल ।

सात नदियों के नाम हैं—(१) जलधर (२) दैवत (३) श्यामक (४) उद्रक (५) अम्बिकेय (६) रम्य (७) केशरी ।

सात चक्रों का सप्त अग्नियों तथा सात सोम संस्थाओं के रूप में भी वर्णन हुआ है । सोम संस्थाओं के नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार गिनाये गये हैं—(१) आत्माग्नि स्टोम (२) उष्टवक्य (३) थोडसी (४) वाजपेयक (५) अति रात्र (६) आप्त (७) याम ।

अग्नि पुराण में सात चरु यज्ञ एवं सात हवि यज्ञों का वर्णन है । चरु यज्ञ हैं—(१) पुरोष्टक (२) पार्वण (३) श्रावणी (४) अग्रहायणी (५) चैत्र (६) अश्व (७) युजी ।

हवि यज्ञ भी सात हैं—(१) अग्न्याधेय (२) अग्निहोत्र (३) दर्श (४) पौर्णमास (५) चातुर्मास्य (६) आग्रहायण (७) निरुढ ।

सात अग्नियाँ हैं—(१) ब्रह्माग्नि (२) आत्माग्नि (३) योगाग्नि (४) कालाग्नि (५) सूर्याग्नि (६) वैश्वानर (७) आतप ।

मुण्डक उपनिषद के अनुसार अग्नि देव की सात जिह्वाऐं हैं—(१) काली (२) कराली (३) मनोजवा (४) लोहिता (५) धूम्रवर्णा (६) स्फुल्लिंगिनी (७) विश्वरुचि।

सात समुद्रों और सात द्वीपों के नाम मार्कण्डेय पुराण में इस प्रकार गिनाये गये हैं।

समुद्र—(१) लवण सागर (२) इक्षुसागर (३) सुरासागर (४) दुग्ध सागर (५) दधि सागर (६) घृत सागर (७) जल सागर।

द्वीप—(१) जम्बूद्वीप (२) प्लक्ष द्वीप (३) शाल्मलि द्वीप (४) कुश द्वीप (५) क्रौंच द्वीप (६) शाक द्वीप (७) पुष्कर द्वीप।

इन सभी प्रतिपादनों में यह संकेत है कि हर स्तर की क्षमता बीज रूप में अपने भीतर विद्यमान है यदि उन्हें जागृत करने का प्रयत्न किया जाय तो व्यक्ति उच्चस्तरीय स्थिति तक निरन्तर बढ़ता चल सकता है और प्रगति के उच्चस्तर तक पहुँच सकता है। बीज का अस्तित्व और फल का परिणाम सुनिश्चित है। आवश्यकता उस कृषि कर्म की—बागवानी की रीति-नीति जानने अपनाने की है जिसे अध्यात्म की भाषा में साधना कहते हैं।

अग्नि पुराण मन्त्र में गायत्री के साथ सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है। भूः भुवः स्वः जनः तपः सत्यम्। यह सात व्याहृतियाँ हैं। इन्हें सात ऋषि एवं सात लोक भी कहा गया है। अग्नि पुराण में सात ऋषियों के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—

वशिष्ठः काश्यपोऽतथात्रिर्जमदग्निः स गोतमः विश्वामित्र भरद्वाजो मुनयः सप्त साम्प्रतम्।

(१) वशिष्ठ (२) काश्यप (३) अत्रि (४) जमदग्नि (५) गौतम (६) विश्वामित्र (७) भारद्वाज।

इन सातों की सत्ता सप्त चक्रों में विद्यमान हैं। इन सातों की शक्ति इन्द्रियों के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

प्राणाः वा ऋषयः। इमौ एव गौतम भरद्वाजौ। अयमेव गौतमः अयं भरद्वाजः। इमौ एव विश्वामित्र जमदग्नि। अयमेव विश्वामित्रः अयं जमदग्निः। इमो एव वशिष्ठ कश्यपौ अयमेव वशिष्ठः अयं कश्यपः वागेवात्रिः।

—श्रुति

सात प्राण ही सात ऋषि हैं। दो कान गौतम और भारद्वाज हैं।

दो आँखें विश्वामित्र और जमदग्नि हैं । दो नासिका छिद्र वशिष्ठ और काश्यप हैं । वाक् अत्रि हैं ।

सात लोक आकाश में खोजना व्यर्थ है । वे किसी ग्रह–नक्षत्र के रूप में नहीं हैं, वरन् आत्म–सत्ता चक्रों के रूप में ही उनका अस्तित्व है । कहा गया है–

मूलाधारे तु भूर्लोको स्वाधिष्ठाने भुवस्ततः स्वर्लोको नाभि देशे च हृदये तु महस्तथा । जनः लोके कण्ठ देशे, तपो लोकं ललाटके । सत्य लोकं महारन्ध्रे इति लोका पृथक्–पृथक् ।

–महायोग विज्ञान

(१) भू–लोक मूलाधार में (२) भुवः लोक स्वाधिष्ठान में (३) स्वः लोक नाभि स्थान में (४) मह लोक हृदय में (५) जन लोक कण्ठ में (६) तप लोक ललाट में (७) सत्य लोक ब्रह्मरंध्र में विद्यमान है । जहाँ स्थान मात्र गिना दिये गये हैं । वहाँ उन स्थानों में अवस्थित चक्रों का ही संकेत समझा जाना चाहिए ।

उपनिषद्कार ने मानवी काया को 'छः अरे' एवं 'सात चक्र' लगा हुआ विलक्षण रथ कहा है–यह षट्चक्रों का सप्त चक्रों का ही संकेत है–

ऊथेमे अन्य उपरे विलक्षण सप्त चक्रे शब्दर आहुरर्पितम् ।

अन्य लोक उस विलक्षण को सात चक्र और छै अरों वाला कहते हैं ।

पद्म पुराण में भागवत माहात्म्य वर्णन सन्दर्भ में धुन्धुकारी प्रेत की मोक्ष उस कथा श्रवण के फलस्वरूप होने का उल्लेख है । यह प्रेत बाँस की गाँठों को फोड़ता हुआ नीचे से ऊपर चला था और गाँठें तोड़कर प्रेत योनि से छूटा तथा परम पद का अधिकारी बना था । अध्याय ५ श्लोक ६४ में यह बाँसों की गाँठ बेधे जाने का रहस्योद्घाटन करते हुए इसे यौगिक ग्रन्थि भेद बताया है । कहा गया है–

जडस्य शुष्कं वंशस्यं यत्र ग्रन्थि विभेदनम् ।
चित्रं किम तदा चित्त ग्रन्थिभेदः कथा श्रवात् ।।

इसमें सूखे और जड़ बाँस की गाँठें फटने का तात्पर्य चित्त की ग्रन्थियों का खुलना बताया गया है ।

भागवत पुराण के स्कन्ध २, अध्याय २ के १९, २०, २१ श्लोकों में महर्षि शुक्राचार्य ने विहंगम मार्ग से ब्रह्म निष्ठ योगियों के प्राण त्याग का विधान बताया है । इसमें षट्चक्र वेधन विधान की प्रक्रिया है । छहों

चक्रों को वेधन करते हुए अन्त में सहस्रार चक्र में प्राण को लय करते हुए प्राण त्याग करने की विधि समझाई गई है ।

यह सप्त ऋषि जिस पर अनुग्रह करते हैं उन्हें सद्‌गुणों की सात विभूतियाँ प्रदान करते हैं । स्पष्ट है कि सद्‌गुण ही वे देव अनुग्रह हैं जिनके मूल्य पर भौतिक और आत्मिक, सम्पदायें सफलतायें खरीदी जा सकती हैं । यह भ्रान्तियाँ निरस्त की जानी चाहिए कि उपासना के फलस्वरूप सीधी सम्पदाऐं मिलती हैं । सच्ची साधना के फलस्वरूप अन्तरंग में उत्कृष्टता उभरती है और सज्जनोचित सद्‌भावों का विस्तार होता है । बहिरंग में सत्प्रवृत्तियाँ सक्रिय होती हैं और क्रिया–कलापों में महामानवों जैसी प्रतिभा व्यवस्था एवं शालीनता की मात्रा बढ़ती है । जहाँ आत्म–विकास का यह स्वरूप दृष्टिगोचर हो समझना चाहिए कि वहाँ सच्ची साधना की गई और उसके फलस्वरूप व्यक्तित्व के परिष्कार के रूप में देव अनुग्रह अवतरित हुआ । व्यक्तित्व निखरने के फलस्वरूप ही भौतिक और आत्मिक सफलताओं के, ऋद्धि–सिद्धि के रूप में वे प्रतिफल प्राप्त होते हैं जिनका माहात्म्य साधनाओं की सफलता के रूप में वर्णन किया गया है ।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यस्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्तितम् ।।

—महाभारत

ग्वाला जिस प्रकार लाठी लेकर पशुओं की रक्षा करता है उस तरह देवता किसी की रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को सन्मार्ग पर नियोजित कर देते हैं ।

सप्त ऋषियों का अनुग्रह सात लोकों, सात द्वीपों, सात समुद्रों, सात पर्वतों, सात नदियों का स्वामित्व उपलब्ध होने के रूप में मिलता है । तात्पर्य यह हुआ कि ब्रह्माण्ड सत्ता का प्रतीक आत्म सत्ता पर अपना अधिकार आधिपत्य मिलता है । अपनी क्षमताओं को समझने, उन्हें उभारने और उपभोग करने का कौशल प्राप्त होता है । जिसे यह सफलता मिल सकी समझना चाहिए उसे ब्रह्माण्ड का आधिपत्य मिल गया ।

सात यज्ञ, सात अग्नि, सात सोम आदि की उपासना से जो प्रतिफल मिलते बताये गये हैं उन्हें भी उन्हीं सात ऋषियों के वरदान समझना चाहिए जो अपने आत्म सत्ता के हिमालय में निरन्तर निवास और तप करते हैं । इन्हीं शक्ति धाराओं को साधना विज्ञान में सात चक्र कह

गया है । प्रत्येक चक्र प्रत्येक ऋषि से एक–एक वरदान एक–एक सद्गुण के रूप में प्राप्त होता है । वे ही ऋद्धि–सिद्धियों के साथ में जीवन को देवोमय बनाते हैं और स्वर्गीय उपलब्धियों से सुसम्पन्न करते हैं ।

'यों पौराणिक गाथाओं में ऋषि, व्यक्ति–विशेष थे । महामानवों के रूप में योग और तप में निरत–स्व–पर कल्याण में संलग्न जीवनयापन करते हुए उनका वर्णन किया गया है । पर आत्म विज्ञान में ऋषि तत्व जागृत एवं प्रखर प्राण सत्ता को कहा गया है, वे सूर्य के समान एक कहे जा सकते हैं । अथवा सप्त किरणों के रूप में उनके सात नाम दिये जा सकते हैं और सुविधा के लिए सात वर्गों में विभाजित करके सात व्याख्याऐं की जा सकती हैं । सृष्टि के आदि में जब जीव सत्ता प्रकट हुई तो उसका स्वरूप 'ऋषि प्राण' के रूप में था । यह जीवात्मा का शुद्ध स्वरूप है । उसी स्थिति में पहुँचने पर आत्मा को देवात्मा एवं परमात्मा के रूप में परिष्कृत बनने का अवसर मिलता है । शतपथ में इस रहस्य का इस प्रकार उल्लेख हुआ है ।

असद्वा इदमग्न आसीत् तदाहुः कि तदसदासी दित्यृष्यों वा व तेऽमेऽ सदासीत तदाहुः के ते ऋषय इति, प्राणा वा ऋषय ।

—शतपथ ६/१/१/१

पहले सृष्टि से पूर्व में यह असत् था । तब कहा—वह असत् क्या था ? उत्तर—वे ऋषि ही थे । वे सृष्टि से पूर्व असत् थे । तब कहा—वे ऋषि क्या थे ? प्राण ही ऋषि थे ।

सप्त ऋषि मरते नहीं, वे आकाश में सात तारागणों की श्रृंखला के रूप में भी चमकते हैं और हमारी जीव सत्ता में भी सप्त चक्र बन कर विद्यमान हैं । जो इन ऋषियों के सान्निध्य में रहने की–उनका अनुग्रह प्राप्त करने की साधना करता है वह उन ऋषियों की तरह ही ब्रह्म वर्चस् सम्पन्न बन जाता है । अथर्व वेद इस तथ्य की साक्षी इस प्रकार देता है ।

तद्ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीव नायो भवति य एवं वेद ।

—अथर्व ८/१३, ९६/१०/४

सप्त ऋषि तप और बल ब्रह्म के आधार पर जीवित रहते हैं, जो इस रहस्य को जानता है वह ब्रह्मवर्चस् और जीवन को प्राप्त करता है ।

सात चक्रों को सप्त प्राण केन्द्र कहा गया है । इन्हीं को, सात यज्ञ, सात समिधा, सात लोक आदि कहा गया है । ये सभी सात-सात अन्तर्गुहा में निहित हैं । इस रहस्य को मुण्डकोपनिषद् २/१/८ में प्रकट किया गया है ।

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्,
सप्तार्चिषः समधिः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः,
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ।।

—मुण्डक २/१/८

सात चक्रों में समस्त तीर्थ प्रतिनिधि रूप में विद्यमान हैं । इनका अवगाहन करने से समस्त तीर्थों का पुण्य फल साधक को प्राप्त होता है ।

ऐसे अनेक तथ्यों पर विचार करके तत्वज्ञों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कुण्डलिनी के चक्र एक प्रकार की फ्रीक्वैंसियाँ हैं जो ब्रह्माण्ड व्यापी विशिष्ट शक्तियों से चेतना का सम्बन्ध जोड़ती हैं । इस संयोग का नाम ही सिद्धि है । वह शक्तियाँ ही देवता, ऋषि और लोक कहलाती हैं । उनकी उपलब्धि जंग लगे लौह जीवन को भी खरा कुन्दन, सामान्य मनुष्य को सम्राटों जैसा ऐश्वर्यवान बना देती है । सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं शेष रहता जो इन चक्रों को जागृत कर लेने के बाद मिल न सकता हो ।

इन चक्रों के जागरण के लिए नियमित जप के अतिरिक्त पंचकोशों की अनावरण साधना का उच्चस्तरीय अभ्यास भी करना पड़ता है । यों सामान्य जप उपासना से भी उनका विकास होता है और शनैः शनैः इन चक्रों में सन्निहित शक्तियों का लाभ मिलता है, पर यदि उस शक्ति की अधिक मात्रा अभीष्ट हो तो उच्चस्तरीय साधना का विकास करना पड़ता है । वह अभ्यास कठिन तो है, पर उनसे साधक को वह शक्तियाँ मिलती हैं, जिन्हें पाकर वह इन्द्र जैसी सामर्थ्य, कुबेर जैसी सम्पन्नता और ऋषियों जैसी त्रिकालदर्शी सिद्धि का आनन्द लाभ प्राप्त करता है ।

कुण्डलिनी महाशक्ति का साक्षात्कार

कुण्डलिनी महाशक्ति का परिचय, स्थान और स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह मूलाधार चक्र के अग्नि कुण्ड में निवास करती है । अग्नि स्वरूप है । सुप्त-सर्पिणी की तरह सोई पड़ी है । स्वयंभू महालिंग से-शिव लिंग से लिपटी पड़ी है । इसी स्थिति की झाँकी शिव

प्रतिमाओं में कराई जाती है । योनि क्षेत्र में एक सर्पिणी शिवलिंग से लिपटी हुई प्रदर्शित की जाती है । शिव पूजा में इस प्रतिमा पर जल चढ़ाने का विधान है । रुद्राभिषेक में जल कलश के पैंदे में छिद्र करके उसे तीन टाँग की तिपाई पर स्थापित करते हैं और उसमें से एक–एक बूँद पानी शिव लिंग पर टपकता रहता है । यह कुण्डलिनी का ही समग्र स्वरूप है ।

सहस्रार चक्र को अमृत कलश कहा गया है । उससे सोमरस टपकने का उल्लेख है । खेचरी मुद्रा में इसे 'अमृत स्राव' बताया गया है । यह स्राव अधोमुख है । नीचे की दिशा में रिसता टपकता रहता है । कुण्डलिनी मूल तक जाता है ।

कुण्डलिनी महाशक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने और अमृत सोम का आस्वादन कराने का लाभ ब्राह्मी एकता के माध्यम से ही सम्भव है । यही कुण्डलिनी जागरण का उद्‌देश्य है । सुप्त सर्पिणी अग्नि कुण्ड में पड़ी–पड़ी विष उगलती रहती है और उससे जलन ही जलन उत्पन्न होती है । वासना की अग्नि शान्त नहीं हो सकती, वह शरीर और मन की दिव्य सम्पदाओं का विनाश ही करती रहती है । इसका समाधान अमृत रस को पान करने, सोम सम्पर्क से ही सम्भव होता है । यह तथ्य जन–साधारण को समझाने के लिए तीन टाँग की तिपाई पर कलश स्थापित करके शिवलिंग पर अनवरत जल धार चढ़ाने की व्यवस्था की जाती है और इस आध्यात्मिक आवश्यकता का परिचय कराया जा सकता है कि जलन का समाधान मानसिक एवं आत्मिक अमृत रस पीने से, बौद्धिक एवं भावनात्मक उत्कृष्टता का रसास्वादन करने से ही सम्भव हो सकता है ।

रुद्राभिषेक में जल कलश के नीचे जो तीन टाँग की तिपाई रखी जाती है, वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की प्रतीक है । इन्हीं तीन आधारों के सहारे कुण्डलिनी जागरण की पुण्य प्रक्रिया सम्पन्न होती है । अग्नि और सोम के मिलन की आवश्यकता और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले देवत्व का ही प्रत्यक्षीकरण रुद्राभिषेक के कर्मकाण्डों में किया जाता है ।

कुण्डलिनी परिजप में स्थान–स्थान पर स्वयंभू लिंग की चर्चा है । बहुत स्थानों पर उसे 'कन्द' भी कहा गया है । यह क्या है ? इसे जानने के लिए स्थूल शरीर से सम्बन्धित शरीर शास्त्र और सूक्ष्म शरीर से

सम्बन्धित अध्यात्म शास्त्र का पर्यवेक्षण किया जा सकता है । शरीर में यह घटक सुषुम्ना का, मेरुदण्ड का, नीचे वाला अन्तिम छोर है । प्रत्यक्ष हलचलों की दृष्टि से इस संस्थान का इतना महत्त्व नहीं जितना कि वहाँ से निकलने वाली उस विद्युत शक्ति का जो इस समूचे क्षेत्र के अति महत्वपूर्ण संस्थानों को प्रभावित एवं अनुप्राणित करती है ।

कन्द का स्थूल शरीर में प्रतीक प्रतिनिधि तलाश करना हो तो दृष्टि 'कॉडा इक्वाइना' पर जाकर टिकती है । मेरुदण्ड मस्तिष्क से प्रारम्भ होकर चंचु प्रदेश की अन्तिम कशेरुका तक जाती है और उसके बाद रेशमी धागों की भांति शुण्डाकृति हो जाती है। उसके अन्त में अगणित पतले-पतले धागे से पैदा हो जाते हैं, जिनसे नाड़ी तन्तुओं का एक सघन गुच्छा तैयार हो जाता है । इसी गुच्छक को "कॉडा इक्वाइन" कहते हैं । सूक्ष्म शरीर के 'कन्द' का इसे प्रतिनिधि कहा जा सकता है । शरीर शास्त्र की दृष्टि से यही स्वयंभू लिंग है । मूलाधार चक्र में 'आधार' शब्द इसी स्थान के लिए व्यवहृत हुआ है । रीढ़ की अन्तिम चार अस्थियों के सम्मिलित समुच्चय को भी कई मनीषियों ने 'कन्द' बताया है । मलमूत्र छिद्रों के मध्य स्थान पर मूलाधार बताया गया है । उसे चमड़ी की ऊपरी सतह नहीं मान लेना चाहिए वरन् उस स्थान की सीध में ठीक ऊपर प्रायः तीन अंगुल ऊँचाई पर अवस्थित समझना चाहिए । मस्तिष्क में आज्ञाचक्र भी भ्रूमध्य भाग में कहा जाता है, पर वह भी ऊपरी सतह पर नहीं तीन अंगुल गहराई पर है । ब्रह्मरन्ध्र भी खोपड़ी की ऊपरी सतह पर कहाँ है ? वह भी मस्तिष्क के मध्य केन्द्र में है । ठीक इसी प्रकार मूलाधार को भी मल-मूत्र छिद्रों के मध्य वाली सीध पर अन्तःगह्वर में अवस्थित मानना चाहिए ।

यहाँ एक बात हजार बार समझ लेनी चाहिए कि अध्यात्म शास्त्र में शरीर विज्ञान में विशुद्ध रूप से सूक्ष्म शरीर का वर्णन है । स्थूल शरीर में तो उसकी प्रतीक छाया ही देखी जा सकती है । कभी किसी शारीरिक अंग को सूक्ष्म शरीर से नहीं जोड़ना चाहिए । मात्र उसे प्रतीक प्रतिनिधि भर मानना चाहिए । शरीर के किसी भी अवयव विशेष में वह दिव्य शक्तियाँ नहीं हैं जो आध्यात्मिक शरीर विज्ञान में वर्णन की गई हैं । स्थूल अंगों से उन सूक्ष्म शक्तियों का आभास मात्र पाया जा सकता है ।

मूलाधार शब्द के दो खण्ड हैं । मूल+आधार । मूल अर्थात् जड़ (बेस) आधार अर्थात् सहायक (सपोर्ट) जीवन सत्ता का मूल-भूत

आधार होने के कारण उस शक्ति संस्थान को मूलाधार कहा जाता है। वह सूक्ष्म जगत में होने के कारण अदृश्य है। अदृश्यों का प्रतीक चिन्ह प्रत्यक्ष शरीर में भी रहता है। जैसे दिव्य दृष्टि के आज्ञा चक्र को पिट्यूटरी और पीनियल रूपी दो आँखों में काम करते हुए देख सकते हैं। ब्रह्मचक्र के स्थान पर हृदय को गतिशील देखा जा सकता है। नाभिचक्र के स्थान पर यानि आकृति का गड्ढा तो मौजूद ही है। मूलाधार सत्ता को मेरुदण्ड के रूप में देखा जा सकता है। अपनी चेतनात्मक विशेषताओं के कारण उसे वह पद एवं गौरव प्राप्त होना हर दृष्टि से उपयुक्त है। प्राण का उद्गम मूलाधार पर उसका विस्तार, व्यवहार और वितरण तो मेरुदण्ड माध्यम से ही सम्भव होता है।

मूलाधार के ऊपर और स्वाधिष्ठान से कुछ नीचे वाले भाग में शरीर शास्त्र के अनुसार 'प्रोटेस्ट, ग्लैण्ड' है। शुक्र संस्थान यही होता है। इसमें उत्पन्न होने वाली तरंगें काम प्रवृत्ति बन कर उभरती हैं। इसी से जो हारमोन उत्पन्न होते हैं, वे वीर्योत्पादन के लिए उत्तरदायी होते हैं। स्त्रियों का गर्भाशय भी यहीं होता है। सुषुम्ना के निचले भाग में लम्बर और सेक्रल प्लैक्सस नाड़ी गुच्छक हैं। जननेंद्रियों की मूत्र त्याग तथा कामोत्तेजन दोनों क्रियाओं पर इन्हीं गुच्छकों का नियन्त्रण रहता है। यहाँ तनिक भी गड़बड़ी उत्पन्न होने पर इनमें से कोई एक अथवा दोनों ही क्रियाऐं अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। बहुमूत्र, नपुंसकता, अति कामुकता आदि के कारण प्रायः यहीं से उत्पन्न होते हैं।

गर्भाशय की दीवारों से जुड़ हुए नाड़ी गुच्छक ही गर्भस्थ शिशु को उसके नाभि मार्ग से सभी उपयोगी पदार्थ पहुँचाते रहते हैं। इन गुच्छकों को यह पहचान रहती है कि कितनी आयु के भ्रूण को क्या-क्या पोषक तत्व चाहिए। गर्भाशय के सम्वेदनशील नाड़ी गुच्छक उस अनुपात का-मात्रा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं और बिना राई रत्ती व्यतिक्रम किये शिशु की आवश्यकता पूरी करते रहते हैं।

जीवन की आवश्यकता पूरी करने के लिए सबसे प्रथम और सबसे आवश्यक क्रिया चूसने की होती है। बच्चे में यह प्रवृत्ति (रिप्लेक्स) उसे माता का स्तन पान करने की उत्तेजना देता है। यही प्रवृत्ति प्रौढ़ता आने पर योनेच्छा (सेक्स रिप्लेक्स) के रूप में विकसित होती है। बिना किसी प्रशिक्षण के यह दोनों ही प्रवृत्तियाँ अपने-अपने ढंग से हर प्राणी में अन्तःप्रेरणा से ही उठती और प्रयोग में आती हैं। इन

जीवनोपयोगी प्रेरणाओं का केन्द्र यही स्थान है, जिसे कन्द, कुण्ड या काम बीज कहते हैं ।

कन्द का एक नाम कर्म भी है । इसे कच्छपावतार का प्रतिनिधि बताया गया है । उसके पैरों को सिकुड़ने-फैलने वाले वाहन को वहाँ से निसृत होने वाली शक्ति धाराओं की ओर संकेत किया गया है । कन्द की आकृति अण्डे के समान मानी गई है । उसे कछुए की उपमा भी दी गई है । समुद्र मंथन की कथा में रई मंदिराचल पर्वत की बनाई गई थी । उस पर्वत के नीचे भगवान कूर्मावतार के रूप में कच्छप बनकर बैठे थे और उस भार को अपनी पीठ पर उठाया था । यह कूर्म या कन्द की ही अलंकारिक व्याख्या है ।

नाड़ी गुच्छकों के अतिरिक्त कन्द की व्याख्या मेरुदण्ड की अन्तिम चार अस्थियों और उस स्थान पर बिखरे पड़े नाड़ी संस्थानों के रूप में भी की जाती है । इसे समझने के लिए मेरुदण्ड की अस्थि संरचना को समझना होगा ।

शरीर विज्ञान के अनुसार मेरुदण्ड छोटे-बड़े ३३ विरूपस्थि खण्डों या कशेरुओं-वर्ट्रीब्रा से मिल कर बना है । आकृति में वह सर्पाकार है । प्रत्येक दो कशेरु के मध्य में एक मांस निर्मित गद्दी-सी रहती है । जिस पर प्रत्येक कशेरु टिका और सूत्रों से कसा हुआ है । इसी कारण यह लचीला है और अपनी धुरी पर हर दिशा में घूम सकता है । उसे पाँच भागों में बाँटा जा सकता है ।

(१) ग्रीवा-सर्वाइकल-७ कशेरू (२) पीठ-थोरेक्स-१२ कशेरू (३) कटि प्रदेश-लम्बर-५ कशेरू (४) वस्तिगह्वर-त्रिक प्रदेश-सेक्रल-५ कशेरू (५) पुच्छिकास्थि-चंचु-कॉक्सीक्स-४ कशेरू । सब मिलाकर इन तेतीस खण्डों को तैंतीस देवता कहा गया है । इनमें से प्रत्येक में सन्निहित दिव्य क्षमता को देवता माना गया है ।

मेरु दण्ड पोला तो है पर ढोल की तरह खोखला नहीं । उसमें मस्तिष्कीय मज्जा भरी हुई है । प्रत्येक कशेरू के पिछली ओर दाँये-बाँये अर्ध वृत्ताकार छिद्र होता है, जिसमें से छोटे नाड़ी सूत्रों से निर्मित बड़ी नाड़ियाँ बाहर निकलती हैं । मेरुदण्ड का निचला भाग शंकु के आकार का है जिसे-फाइनम टर्मीनिल कहते हैं ।

चंचु प्रदेश के कशेरू जितने छोटे हैं, उतने ही चौड़े हैं । वे अन्दर से पोले भी नहीं हैं और एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं । यह चार कशेरू

मिल कर अण्डे की आकृति वाला अथवा फूल की कली के सदृश आकार बनता है । इसे 'कॉक्सीक्स' कहते हैं । इस गोलक को कुण्डलिनी योग में 'कन्द' एवं स्वयंभू लिंग के नाम से पुकारा गया है । कुण्डलिनी शक्ति इसी के इर्द-गिर्द सर्पिणी की तरह लिपटी मानी गई है ।

नाड़ी गुच्छकों एवं मेरुदण्ड के निम्न भाग के अस्थि समूहों के 'ऊपर एक सूक्ष्म शक्ति छाई हुई है, उसी को मूलाधार का, नाभिक (न्यूक्लियस) समझा जाना चाहिए । उसी के प्रभाव से उस क्षेत्र में बिखरे पड़े अनेक संस्थान अपना-अपना काम करते और एक से एक बड़े-बड़े प्रभाव उत्पन्न करते देखे जा सकते हैं । कमर से लेकर पेडू और जननेन्द्रिय मूल तक का पूरा क्षेत्र दक्षिणी ध्रुव के समतुल्य माना गया है और वहाँ किसी भी क्षेत्र में जो कुछ होता है उस सब पर मूलाधार का प्रभाव आँका जा सकता है । नाभि, गुर्दे, मूत्राशय, यौन संस्थान, पौरुष ग्रन्थियाँ आदि की समस्त गतिविधियों को-प्रजनन प्रक्रिया को उसी दिव्य केन्द्र के अनुदान एवं चमत्कार कह सकते हैं । जीवनी शक्ति का, क्रिया शक्ति का, उमंग-उत्साह का केन्द्र इसी को कहा गया है । कन्द के स्वरूप और महत्व का वर्णन अध्यात्म शास्त्रों से इस प्रकार हुआ है-

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्ति शुभमोक्षप्रदायनी ।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स वेदवित् ।।

-गोरक्ष पद्धति

मंगलमय मोक्ष प्रदायिनी कुण्डलिनी शक्ति 'कन्द' के ऊर्ध्व भाग में अवस्थित है । वही प्रसुप्त होने पर मूढ़मति लोगों को बन्धन में बाँधे हुए है । इस मर्म को जो जानता है वही वास्तविकता को जानने वाला ज्ञानवान है ।

गुदाद्वय गुलतश्चोध्व मेढ्रैकांगुलतस्त्वधः ।
एव चास्ति समं कन्दं समता चतुरंगुलम् ।।

-शिव संहिता

गुदा एवं शिशन के मध्य में जो योनि है वह पश्चिमाभिमुखी अर्थात् पीछे को मुख है, उसी स्थान में कन्द है और इसी स्थान में सर्वदा कुण्डलिनी स्थित है ।

तन्मध्ये लिंगरूपी द्रुतकनक-
कलाकोमलः पश्चिमास्यो ।

ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथम,
किसलयाकाररूपः स्वयम्भुः ।
विद्युत्पूर्णेन्दुविम्बुप्रकरकरचय-
स्निग्धसन्तानहासी काशो ।
वासी विलासी विलसति,
सरिदावर्त्तरूप प्रकारः ।।
तस्योद्भवे विसतन्तुसोदर-
लसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी ।
ब्रह्मद्वारमुख मुखेनं मधुरं,
सछादयन्ती स्वयम् ।
शंखावर्तनिभा नवीनचपला-
मालाविलासास्पदा ।
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि,
लसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ।।

—षट्चक्र निरूपण

अर्थात्—त्रिकोण के भीतर स्वयंभू लिंग है जिसका वर्ण स्वर्ण के समान है और जिसका सिर नीचे की ओर है । उस नूतन किशलय के समान देव का प्रकाश ज्ञान—ध्यान द्वारा ही सम्भव है । विद्युत और पूर्ण चन्द्रमा के समान ही वह स्निग्घ सौन्दर्ययुक्त है । इस स्वयंभू लिंग पर कमल—तन्तु के समान अति सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति सो रही है । वह जगत को मोहित करने वाली है और ब्रह्मद्वार के मुख को अपने मुख से ढके हुए है । शंख की चक्रवत् रेखाओं के समान उसकी चमकीली सर्पाकार आकृति शिवलिंग के चारों ओर साढ़े तीन फेरे लिए हुए है ।

कुण्डलिनी की तुलना तो विद्युत शक्ति, ऊर्जा एवं आभा से की गई है । "तडिल्लता समरुचिर्विद्युल्लेखेव "भास्वरा" सूत्र में उसे बिजली की लता रेखा जैसी ज्योतिर्मय बताया गया है । उसी प्रकार अन्यत्र उसका उल्लेख "तडिल्लेखा तन्वी तपनशर्शि वैश्वानरमयी" के रूप में किया गया है । उसे प्रचण्ड अग्नि शिखा एवं दिव्य वैश्वानर के समतुल्य कहा गया है ।

मूलाधारस्य ब्रह्मयात्म तेजो मध्ये व्यवस्थिता ।
जीव शक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराय तेजसी ।।

—योग कुण्डल्युनिषद्

मूलाधार के मध्य वह आत्म तेज, ब्रह्म तेज रूपी कुण्डलिनी निवास

करती है । वही जीव शक्ति, प्राण शक्ति है । वे तेज रूप है ।

आधार शक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः ।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्ति पदास्पदः ।।

—वृहज्जावालोपनिषद्

मूलाधार (चक्र) की शक्ति से धारण हुई यह कालाग्नि ऊर्ध्वगामी है और उसी प्रकार सौम निम्नगामी है, जो शिव शक्तिमय कहलाता है ।

मूलाधारस्थ वहवयात्म तेजो मध्ये व्यवस्थिता ।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारण तैजसी ।।

—योग कुण्डल्युपनिषद्

कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में स्थित आत्माग्नि तेज के मध्य में अवस्थित है । वह जीव की जीवनी शक्ति है, तेजस् और प्राणाकार है ।

मूलाधाराभिधं चक्रं प्रथमं समुदीरितम् ।
तत ध्येयं स्वरूप तु पावकाकारमुच्यते ।।
स्वाधिष्ठानाभिधं चक्र द्वितीयं चोपरिस्थितम् ।
प्रवालाङ्कुरं तुल्य तु तत्र ध्येयं निगद्यते ।।
तृतीयं नाभिचक्रे तु ध्येयं रूपं तड़िन्निभम् ।
तुर्ये हृदयचक्रे तु ज्योतिर्लिंगाकृतीर्य्यते ।।
पञ्चमे कण्ठचक्रेतु सुषुम्ना श्वेतवर्णिनी ।
ध्येय षष्ठे तालुचक्रे शून्यचित्तलयार्थकम् ।।
भ्रू चक्रे सप्तमे ध्येयंदापाङ्गुष्टप्रमाणकम् ।
आज्ञाचक्रेऽष्टमे ध्येयं रूपं धूम्रशिखाकृतिः ।।
आकाशचक्रे नवमे परशुः स्वोद्धर्व शक्तिकः ।
एव क्रमेण चक्राणि ध्येयरूपाणि विद्धि च ।।
अखण्डैकरसत्वेन ध्येयस्यैक्येऽप्युपाधितः ।
आकारा विविधायुक्ता नोपाधिश्चेतरः स्वतः ।।
विद्याशक्ति विलासेन पावकात् विस्फुलिंगवत् ।
अकस्मात् ब्रह्मणोऽखंडात् विविधाकृतयोऽभवन् ।।

—महायोग विज्ञान

मूलाधार चक्र में आत्म ज्योति अग्नि रूप दीखती है । स्वाधिष्ठान चक्र में वह प्रवाल अंकुर—सी प्रतीत होती है । मणिपूर में विद्युत जैसी चमकती है । नाभिचक्र में वह बिजली जैसी चमकती है । हृदय कमल के अनाहत चक्र में वह लिंग आकृति—सी प्रतीत होती है । कण्ठ चक्र में

वह श्वेत वर्ण, तालु चक्र में शून्याकार एकरस अनुभव में आती है । भ्रू चक्र में अँगूठे के प्रमाण जलती हुई दीप शिखा जैसी भासती है । आज्ञाचक्र में धूम्र शिखा जैसी और सहस्रार चक्रम में चमकते हुए परशु जैसी दीखती है ।

यह सभी ज्योतियाँ एक ही हैं । सभी आत्म ज्योति हैं । सभी परम आनन्ददायिनी हैं । विद्या शक्ति कुण्डलिनी की क्रीड़ा से एक ही अग्नि की अनेक चिनगारियों की तरह यह अनेक तरह की प्रतीत होती हैं ।

अपाने घोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वह्निमण्डले ।
ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुना हत्ता ॥
ततो यातौ वह्नयप्यानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम् ।
तनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा ॥
तेन कुण्डलिनी सुप्ता सन्तप्ता सप्रबुध्यते ।
दण्डाहतभुजंगीव निश्वस्य ऋजुतां व्रजेत् ॥

—योग कुण्डल्युपनिषद् १/४३, ४४, ४५

उस अग्नि मण्डल में जब अपान प्राण जाकर मिलता है तो अग्नि की लपटें और तीव्र हो जाती हैं । उस अग्नि से गरम होने पर सोई कुण्डलिनी जागती है और लाठी से छेड़ने पर सर्पिणी जिस प्रकार फुसकार कर उठती है वैसे ही यह कुण्डलिनी भी जागृत होती है ।

प्राणस्थान ततो वह्नि प्राणापानौ च सत्वरम् ।
मिलित्वा कुण्डली याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः ॥
तेनाग्निना च सतप्ता पवनेनैव चालिता ।
प्रसाय स्वशरीर तु सुषुम्नाबदनान्तरे ॥

—योग कुण्डल्युपनिषद् १/६५, ६६

अग्नि स्थान में प्राण के पहुँचने से उष्णता से संतप्त कुण्डलिनी अपनी कुण्डली छोड़कर सीधी हो जाती है और सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है ।

योगिनां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नित्यमञ्जसा ।
आधारे सर्व्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युदाकृतिः ॥

—शारदा तिलक

वह कुण्डलिनी शक्ति योगियों के हृदय में नृत्य ही नृत्य करती है । बिजली की तरह स्फुरणा करती है । वही सम्पूर्ण प्राणियों का आधार है ।

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् ।
शिखा आनीय तस्याग्नेरथ उर्ध्वं व्यवस्थिता ।।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ।।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः चन्द्रमाः ।
इति कुण्डलिनी ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

—कलिकोपनिषद्

मूलाधार में दिव्य त्रिकोण तेज–पुञ्ज, ऊर्ध्वगामी तेज–शिखा के मध्य, परब्रह्म अवस्थित है । वह तेज ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अक्षर, काल, अग्नि, चन्द्रमा, प्राण आदि है । ऐसा कुण्डलिनी ध्यान करना चाहिए ।

ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तरविवरलसत्कोटिसूर्यप्रकाशं
वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी ।
आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा
वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः ।।

—षटचक्र निरूपणम १४

मूलाधार चक्र में कोटि सूर्य जैसे प्रकाश से युक्त कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान रखने पर वाणी की सिद्धि होती है, वह मनुष्यों का नेतृत्व करता है । विद्यावान बनता है । आरोग्य बनता है । चित्त में आनन्द रहता है । ऐसा शीलवान साधक देवताओं द्वारा पूजित होता है ।

निर्वाणाभ्यन्तरगता वह्नि रूपा निवोधिता ।
नारोऽव्यक्तस्त दुपरिक्रोट्यादित्य सन्निभा ।
अत्रैव कुण्डली शक्ति विहरेत् विश्वव्यापिनी ।।

—कौलामृत

वह कुण्डलिनी शक्ति अग्नि रूप है । कोटि सूर्य के समान चमकती है । वह परम शक्ति है । विश्व में विस्तृत विहार करती है ।

मूलाधारे मूल विद्यां विद्युत्कोटि सम प्रभाम् ।

—ज्ञानार्णव तंत्र

मूलधार चक्र में वह मूल विद्या कोटि विद्युत के समान चमकती है ।

कोटि सौदामिनीभासां स्वयंभू लिंग वेष्टिनाम् ।

—तन्त्रसार

स्वयंभू लिंग में लिपटी हुई वह कुण्डलिनी शक्ति कोटि विद्युत की तरह चमकती है ।

हिमाचल प्रदेश में ज्वालामुखी पर्वत पर निकलने वाली अग्नि शिखा को देवस्थान की शक्ति माना गया है । वहाँ आराधना उपासना के लिए दूर-दूर से भक्तजन जाते हैं । अग्नि ज्वाला को दैवी शक्ति मानने के पीछे यह कुण्डलिनी अग्नि का ही तारतम्य है । यज्ञाग्नि में अग्निहोत्र करने, घृतधारा चढ़ाने के पीछे भी अग्नि में सौम के संयोग की आवश्यकता का प्रतिपादन है । ब्रह्माग्नि के संयोग को कुण्डलिनी साधना कहा गया है ।

अग्नि की उत्पत्ति का स्कन्द पुराण में एक मनोरंजक उपाख्यान आता है । सनत्कुमार की अग्निजन्य जिज्ञासा का समाधान करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं-प्रजापति ने सृष्टि के आदि में दिव्य शत वर्षों की अवधि तक महान तप किया । इसमें 'भूः भुवः स्वः शब्द उत्पन्न हुआ । इसका मन के साथ समावेश होने से अग्नि उत्पन्न हुई । वह नीचे गिरी तो भूमि जलने लगी, ऊपर उठी तो आकाश जलने लगा । वह शब्द रूप स्फुल्लिंगों से युक्त, स्वर्णिम आभा वाला परम दिव्य था ।

अग्नि ने ब्रह्माजी से कहा-' मैं भूख से स्वयं जला जा रहा हूँ । मुझे आहार दीजिए ।' ब्रह्माजी ने अपने शरीर के एक-एक करके सभी अवयव उसे खिला दिये । तो भी उसकी तृप्ति नहीं हुई और भूखा-भूखा ही चिल्लाता रहा । कोई और उपाय न देखकर ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा-जो व्यक्ति कामुकता से अभिभूत हो तू उनकी देह में घुस जा और उनकी समस्त धातुओं का भक्षण किया कर ।

रोरूयमणि घाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ।
आह कामाभि भूतानां भुंक्ष्वं त्वं देह धातवः ।
ते काले लब्ध कामस्य सावृत्तिः सम्प्रकल्पिता ।।

-स्कन्द पुराण

रुदन करते हुए अग्नि से ब्रह्माजी ने कृपा पूर्वक कहा तू कामुकों के शरीर में घुस कर उनके धातु संस्थान को खा लिया कर ।

अग्नि ऐसा ही करने लगा किन्तु तो भी उसकी तृप्ति न हुई । इस पर ब्रह्माजी ने उसे मुनियों और देवताओं के अन्तःकरण में प्रवेश करने के लिए कहा । तब कहीं अग्नि तृप्ति हुई और शान्ति मिली ।

ब्रह्मातमाह्त्वमपि यथेष्टां वृत्तिमाश्रय ।
देवमध्ये वह्विर्वापि मुनीनामश्र्येष घ ।
इत्येव मुक्त स्तेनाशु वृत्तिमेताम् रोचयेत ।।

तब ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा—तू ऋषियों के आश्रम में रह । देवों के भीतर और बाहर निवास कर । इस आदेश को प्राप्त कर अग्नि प्रसन्न हुआ और सन्तोषपूर्वक रहने लगा ।

यही जीवन सत्ता में ओत–प्रोत प्राण शक्ति—कालाग्नि एवं कामाग्नि है । इसको अधोगामी बनाने से मनुष्य जलता और गलता है । किन्तु यदि उसे ऊर्ध्वगामी बना लिया जाय तो वही ब्रह्म तेजस बनकर प्रज्ज्वलित होती है । जीव को परम तेजस्वी बनाती है और उसे लौकिक, भौतिक एवं आत्मिक विभूतियों से सुसम्पन्न बनाती है । महाशक्ति कुण्डलिनी का स्तवन करते हुए शक्ति उपासक तत्ववेत्ता की अभिव्यक्ति है—

मेरुदण्डे वह्निना शब्दात् पदं तेजोमयीति च ।
सिद्धिः प्राप्ति पदात् सिद्धिः सर्वकाम पदात् पुनः ।।
सर्वेशा परिपूरेति चक्र स्वामिनीत च ।
गुप्त योनिन्यनंगा च कुसुमेऽनंग मेखले ।
सर्व मन्त्रमयीत्युक्ता सर्व द्वन्द्व क्षयकारी ।
सर्व सौभाग्यदाचेति सर्व विघ्न निवारिणी ।
सर्वज्ञानमयीत्युक्तात्वा सर्व व्याधि विनाशिनी ।
सर्वानन्दमयी देवि, सर्व रक्षा स्वरूपिणी ।
महाशक्ते महागुप्ते ततश्चैव महा–महा ।
कुल कुण्डलिनी देवि, कन्दे मूले निवासिनी ।

—स्तोत्र समुच्चय

मेरुदण्ड में अग्नि रूप, शब्द पद, तेजमयी, सिद्धि प्रदान करने वाली, काम पद, सर्वव्यापक, चक्र संस्थानों की स्वामिनी, गुप्त योनि, काम शक्ति, अनंग मेखला, समस्त मंत्रों की शक्तियुक्त समस्त द्वन्द्वों का क्षय करने वाली, आनन्दमयी, संरक्षक, महाशक्ति, रहस्यमयी, महानतम कुण्डलिनी देवी, कन्द मूल में निवास करती है ।

उपरोक्त प्रतिपादन यह सुनिश्चित करते हैं कि कुण्डलिनी साधना एक प्रकार से शरीर में प्राण एवं संकल्प के आघात द्वारा परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करने, उसे प्रखर बनाने और उसका नियंत्रण नियमन करने की विद्या का नाम है । परमाणु—भौतिकी की सैद्धान्तिक जानकारी वस्तुतः देश के अनेक विज्ञान के विद्यार्थी भी जानते होंगे किन्तु उसके विखण्डन का व्यावहारिक ज्ञान डा. भाभा, डा. मेघनाथ साहा जैसे थोड़े से वैज्ञानिकों को रहा है । क्योंकि यह अति दुस्तर और संकट भरा प्रयोग होता है ।

कुण्डलिनी साधना की स्थिति भी ऐसी ही है । उसके कई विधान तो इतने जटिल व कठिन हैं कि अनजान अभ्यासी भूल में पड़कर पागल हो सकता है । शरीर के किसी अंग का विस्फोट हो सकता है । मृत्यु तक हो सकती है । अतएव वह विधान चाहे जिसे बता देने, चाहे कहीं लिख देने की परम्परा नहीं है । ब्रह्मवर्चस् शान्तिकुञ्ज में इन साधनाओं के शिक्षण और अभ्यास की व्यवस्था की गई है और उस पर शोध का प्रबन्ध भी है ।

सैकड़ों साधक यहाँ आकर उनकी जानकारी प्राप्त करते हैं । इन साधनाओं में प्राण-संधान की क्रिया प्रमुख रहती है । इसलिए कुण्डलिनी साधना में प्राणायाम का विशिष्ट स्थान है । इसी श्रृंखला की गायत्री की प्राण प्रक्रिया पुस्तक में कुछ निरापद प्राणायाम तथा पंचकोशी साधनाओं में कुछ सरल अभ्यास बताये गये हैं वह घर पर रहकर भी किए जा सकते हैं । जो इन कठिन साधनाओं में प्रवेश करना न चाहें वे यदि नियमित गायत्री उपासना करते रहें तो भी वही अपेक्षायें पूर्ण होती हैं । सांसारिक जीवन इस विकास क्रम में कहीं भी बाधक नहीं होता ।

सोऽहम् जप, शक्तिचालिनी मुद्रा, त्राटक नाद योग विन्दु साधना आदि अनेक प्रकार के अभ्यास कुण्डलिनी जागरण के लिए किए जाते हैं । प्राणायाम में लोम-विलोम, सूर्य वेधन प्राणायाम का सर्वाधिक अभ्यास करना पड़ता है । इसमें एक बार बाँये, एक बार दाँये स्वर से वायु लेने और छोड़ने की क्रिया लगातार करनी पड़ती है । इस मंथन का 'प्रहार' मूलाधार में प्रसुप्त सर्पिणी पर करना पड़ता है । आक्सीजन के सहयोग में अग्नि भड़कती है । प्राण की अभीष्ट मात्रा प्रसुप्त अग्नि चिनगारी को मिलते रहने से उसके भड़कने और दावानल का रूप धारण करने में देर नहीं लगती । यही प्राण प्रहार प्रक्रिया सूर्य भेदन प्राणायाम का मुख्य प्रयोजन है ।

अग्नि और प्राण के संयोग एवं प्रहार क्रम को प्रहार प्रताड़ना आदि नाम दिये गये हैं । जागरण के इस प्रयोग का उल्लेख इस प्रकार मिलता है ।

घक्र मध्ये स्थिता देवाः कम्पतिवायु ताडनात् ।
कुण्डल्यपि महामाया कैलाशे सा विलीयते ।।

—शिव संहिता

प्राणवायु के आघात से चक्रों के मध्य रहने वाले देवता जागते हैं और महामाया कुण्डलिनी कैलाश पति शिव से जा मिलती है ।

योगाभ्यासेन मरुता साग्निना बोधिता सती ।
स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला ॥

—हत्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्

योगाभ्यास द्वारा प्राण वायु तथा अग्नि से प्रदीप्त यह महासती कुण्डलिनी ऊपर उठकर हृदयाकाश में पहुँचती है और वहाँ अत्यन्त प्रकाशपूर्ण नाग के रूप में स्फुरित होती है ।

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम् ।
मुखेनाच्छाद्यं तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह ॥
सूचिवद्गुणमादायं प्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया ।
उद्घाटयेत्कपाट तु यथा कुञ्चिकया हठात् ॥
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥

—ध्यानबिन्दूपनिषद्

जिस मार्ग से ब्रह्मस्थान तक सुगमता से जाया जा सकता है, उस मार्ग का द्वार परमेश्वरी कुण्डलिनी अपने मुँह से ढँके सोयी हुई है । अग्नि तथा मन प्रेरित प्राणवायु के सम्मिलित योग से वह जागृत होती है और जैसे सुई के साथ धागा जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के साथ वह कुण्डलिनी सुषुम्ना पथ के ऊपर जाती है । जैसे कुञ्जी से हठात् द्वार खोल दिया जाता है, वैसे ही योगी कुण्डलिनी शक्ति से मोक्षद्वार को भेदते हैं ।

ज्वलनाघातपवना घादोरुन्निद्रितोऽहितोऽहिराट ।
ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्वा विष्णुग्रन्थि भिनत्त्यतः ।
रुद्रग्रन्थि च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट् ।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ॥
सैवावस्था परा ज्ञेवा सैव निर्वृतिकारणा ॥

—योगकुण्डल्युपनिषद

अग्नि और प्राणवायु दोनों के आघात से सुप्ता कुण्डलिनी जाग पड़ती है और ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि तथा षट्चक्र का भेदन करती हुई सहस्रार कमल में पहुँचती है । वहाँ यह शक्ति के साथ मिलकर आनन्द की स्थिति में निवास करती है । वही श्रेष्ठ परा स्थिति

है । यही मोक्ष का कारण है ।

प्राण स्थानं ततोवह्निः प्राणापानौ च सत्वरम् ।
मिलित्वा कुण्डली याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः ।
तेनाग्नाच संतृप्ता पवने परिचालिता ।
प्रसाय स्व शरीरे तु सुषुम्नावदनान्तरे ।

—योग कुण्डल्युपनिषद्

प्राण और अपान के संयोग से महाअग्नि दीप्तिवान होती है और कुण्डलिनी जगती है । प्राणवायु में तीव्रता आने से अग्नि भी तीव्र होती जाती है और अपना क्षेत्र विस्तार करती है ।

ततो वह्नि प्रतापेन प्राणसंघर्षणेन च ।
तेन कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता संप्रबुध्यते ।

—हठयोग प्रदीपिका

प्राणवायु के प्रहार से अग्नि शिखा प्रदीप्त होती है और उसकी गर्मी से प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग पड़ती है ।

सूर्यविघन प्राणायाम द्वारा अग्नि उत्पन्न करने के जिन उपकरणों से रगड़ उत्पन्न करनी पड़ती है, वे इड़ा और पिंगला नामक दो प्राण प्रवाह हैं । जो सुषुम्ना के, मेरुदण्ड के मध्य में रहते हैं । सामान्यतया उनकी गतिशीलता इतनी ही रहती है कि शरीर निर्वाह के लिए जितनी आवश्यक है उतनी ऊर्जा उत्पन्न होती रहे । अधिक मात्रा में प्राण उत्पादन अभीष्ट हो तो इन प्रवाहों को अधिक सक्रिय करना पड़ता है । मन्दी आग पर कुछ पकाना हो तो चूल्हे में सामान्य गर्मी बनाये रहने से काम चल जाता है किन्तु यदि खौलने योग्य ताप की आवश्यकता हो तो अधिक ईंधन डालने तथा हवा धोकने का प्रबन्ध करना पड़ता है । इस प्रयोजन के लिए इड़ा और पिंगला को अधिक गतिशील बनाने के लिए सूर्यविघन प्राणायाम का आश्रय लिया जाता है । इड़ा, पिंगला का महत्व बताते हुए कहा गया है—

शक्तिरूपाः स्थितश्चन्दो वामनाडी प्रवाह्कः ।
दक्षनाडी प्रवाह्श्च शम्भुरूपो दिवाकरः ।।

—शिव स्वरोदय

वाम नाड़ी का प्रवाह करने वाला चन्द्रमा शक्तिरूप से और दक्षिण

नाड़ी का प्रवाहक सूर्य शिव रूप से स्थित रहता है ।

मरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा । धुस्तूरस्मेरपुष्प-ग्रथिततमवपुः कन्दमध्याच्छिरःस्था वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्याज्ज्वलन्ती ॥

—षटचक्र निरूपणम्—२

मेरुदण्ड में बाहर की बाँई ओर चन्द्रमा के प्रकाश के समान इड़ा, सूर्य के प्रकाश के समान पिंगला नाड़ी है । इड़ा से शक्ति रूप और पिंगला से शिवरूप का बोध होता है । मेरुदण्ड के भीतर अग्नि रूप सुषुम्ना है । भ्रू मध्य भाग में इन तीनों का संगम होता है । यह तीनों नाड़ियाँ जननेन्द्रिय मूल में स्थित धतूरे के पुष्प के समान कन्द से उत्पन्न होकर ऊपर मस्तक तक जाती हैं ।

प्राणायाम में श्वांस को खींचना फेंकना भर ही नहीं होता वरन् उसके आवागमन की गति को नियन्त्रित रखना होता है । उनकी चाल एक जैसी रहनी चाहिए । कुम्भक के प्रहार रुकने का समय और वापसी की प्रवाह प्रक्रिया इन सब में समय एवं गति की क्रमबद्धता बनी रहनी आवश्यक है । अस्त—व्यस्तता से अनियमितता और नियंत्रण न रहने से प्राण योग का आधार ही नष्ट हो जाता है और वह मात्र गहरी साँस लेने की—डीप ब्रीदिंग की सामान्य व्यायाम परिपाटी मात्र बनकर स्वल्प फलदायक रह जाती है ।

तात्विकी प्राणायामों में श्वांस क्रिया की एक सुनिश्चित क्रम व्यवस्था बनाकर उसमें 'ताल' उत्पन्न किया जाता है । संगीत शास्त्र के जानकार समझते हैं कि 'ताल' किसे कहते हैं ? उसके आधार पर ही ताल वाद्य बजाने की शिक्षा दी जाती है और स्वर लहरी का सौन्दर्य निखरता है । ताल का ज्ञान न होने पर ढोलक, तबला, मजीरा, करताल आदि बजाये जायें तो उससे कर्ण कटु कर्कशता ही उत्पन्न होगी और सुनने वालों के कानों को अखरेगी । महत्वपूर्ण उद्देश्यों के लिए की गई प्राण योग की साधना में जहाँ श्रद्धा विश्वास भरी संकल्प शक्ति का समावेश करना है वहाँ उसकी ताल बद्धता का अभ्यास करना भी आवश्यक होता है ।

ताल से कितनी प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न होती है उसे विज्ञान वेत्ता भली

प्रकार जानते हैं । पुलों पर से सेना को लेफ्ट-राइट करते हुए नहीं निकलने दिया जाता है । उन पर से गुजरते हुए वे चाल को अस्त-व्यस्त रखते हैं । ताल बद्ध कदम पड़ने से उत्पन्न सूक्ष्म तरंगें पुल में दरारें डाल सकतीं हैं । एक भारी गार्डर छत में लटका दिया जाय और उस पर कार्क जैसी हलकी वस्तु के तालबद्ध आघात पड़ते रहने की यान्त्रिक व्यवस्था कर दी जाय तो उन स्वल्प आघातों से भी उत्पन्न प्रचण्ड शक्ति के फलस्वरूप गार्डर में थरथराहट दृष्टिगोचर होने लगेगी ।

एक नियत गति से काँच के गिलास के पास ध्वनि की जाय तो वह उन आघातों से टूट जायगा । संगीत का शारीरिक और मानसिक प्रभाव होता है उसका स्वास्थ्य सम्बर्धन के लिए-रोग निवारण के लिए सफल प्रयोग हो रहा है । पशुओं का दूध और पक्षियों की प्रजनन क्षमता बढ़ाने में क्रमबद्ध संगीत के लाभ देखे गये हैं । पेड़-पौधों की कृषि उपज को बढ़ाने में भी संगीत का उत्साहवर्धक उपयोग होता है ।

'स्टोन हैञ्ज' के पुराने अवशेष में यह विशेषता है कि मध्यम स्वर लहरी के ध्वनि प्रवाह से वे काँपने लगते हैं । अस्तु उस क्षेत्र में न केवल बजाना वरन् गाना भी मना है । चेतावनी के रूप में वहाँ यह सूचना टँगी है कि ताल बद्धता इन अवशेषों को गिरा सकती है । इसलिए यहाँ वैसा कुछ न किया जाय ।

लोम विलोम प्राणायाम क्रम में यह ताल-प्रक्रिया विशेष रूप से उत्पन्न होती है । एक ही क्रम बना रहने से घुमावदार 'सर्किट' बनता है, पर उलट-पुलट का क्रम दुहराने से 'ताल' की उत्पत्ति होती है । सूर्यवेधन प्राणायाम में ताल बद्धता का उत्पन्न करना स्थूल शरीरगत ऊर्जा को एकत्रित, प्रज्ज्वलित और प्रखर बनाता है । संकल्प शक्ति के आधार पर खींचा हुआ दिव्य प्राण आत्मप्राण की मूलाधार स्थिति को प्रज्ज्वलित करता है । इसी आधार पर प्रसुप्ति जागृति में परिणति होती है और साधक को आत्म सत्ता के अन्तर्गत दिव्य ऊर्जा का अभिवर्धन दृष्टिगोचर होता है । योगशास्त्र में दिव्य प्राण को देवता-कुण्डलिनी अग्नि को दिव्य अग्नि कहा गया है और उसके जागरण से अनेकों दिव्य लाभ मिलने की बात कही गयी है ।

कुण्डलिनी योग की सिद्धि में प्राण शक्ति की प्रधान भूमिका सबने

मानी है । प्राणतत्व का इतना उच्चस्तरीय परिष्कार, उसमें असामान्य प्रखरता पैदा करने की क्षमता 'गायत्री' साधना में निश्चित रूप से है । गायत्री शब्द स्वयं इस तथ्य को घोषित करता है । 'गय' कहते हैं—प्राण को, त्री अर्थात् त्राण करना । गायत्री की प्राण प्रक्रिया का साक्षात्कार ही प्रकारांतर से कुण्डलिनी योग की सिद्धि है । साधक इस साक्षात्कार से आत्म विभोर हो उठता है । यह ऐसी दिव्य अनुभूति है, जिसका एक कण भी चखने को मिल जाय तो मनुष्य उसके लिए बड़े से बड़ा साम्राज्य भी त्याग सकता है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा